

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180197

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 83.1/53^v Accession No. G.H. 2033

Author ग्रामा श्रीराम

Title विषाद 1954

This book should be returned on or before the date
last marked below.

विषाद

(कहानी संग्रह)

लेखक
श्रीराम शर्मा

सरस्वती प्रेस, बनारस

प्रथम संस्करण, १९५४

मूल्य ३)

मुद्रक

सदन लाल गुप्ता, बी०एस-सी०,
टेकनिकल प्रेस, इलाहाबाद

माँ को

जो घर में सब से बड़ी

हो कर भी सबसे

छोटी

है !

सूची

१. भूखा रोज़ेदार	...	...	१
२. हलाहल	...	...	१०
३. प्रतिक्रिया	...	...	१८
४. भ्रातृ युद्ध	...	...	२४
५. दो कैदी	...	...	३२
६. हत्या	...	...	५७
७. प्रेम के लिए	...	...	६७
८. खून और केसर	...	...	७८
९. दूर देश है जाना	...	...	८७
१०. अभाव की पूर्ति	...	...	९७
११. रोग और उपचार	...	...	१०७
१२. बछड़े	...	...	१२१
१३. कलाकार	...	...	१३३
१४. स्वर्ग और नरक	...	...	१४३
१५. आई० सी० एस० का बच्चा	...	...	१५२
१६. संयोग	...	...	१६३

भूखा रोज़ेदार

उसके नाम के आगे न तो मौलवी, मौलाना, शेख या सैयद लगाया जाता था और न उसके नाम के पीछे खान, अली या साहब ।

उसका नाम था 'मेहर' । हाँ, केवल मेहर, मेहर अली भी नहीं । फिर उसके इस छोटे-से नाम के लेने वाले कलकत्ता नगर में अँगुलियों पर गिने जा सकते थे, और एक बार चारों अँगुलियों पर चक्कर मार लेने के बाद अँगूठे महाशय को दुबारा घूमने की तकलीफ नहीं उठानी पड़ती थी । पाँच बरस का बालक हो या अस्सी साल का बूढ़ा, सब इसी नाम से पुकारते थे । मेहर को अपने इस एकाकी और दिग्भ्रमर नाम से न तो घृणा थी और न कोई खास दिलचस्पी !

मेहर कहाँ का रहने वाला था, उसका घर कहाँ है, किसी को मालूम नहीं; आज तक किसी को मालूम करने की ज़रूरत ही नहीं हुई । एक दिन वह घूमते-फिरते कहीं से कलकत्ते के लम्बे-चौड़े मछवा बाजार में आ निकला और वहीं दस रुपए मासिक किराये पर एक छोटा-सा बरामदा लेकर रहने लगा । आज कल समाज में जिन लोगों को बड़ा माना जाता है उनके बड़प्पन के माप-दण्ड और सौ वर्ष पहिले के बड़प्पन के माप में ज़मीन-आसमान का अन्तर आ गया है । पुराने ज़माने का बड़प्पन अपनी सन्तान में लज्जा, नज़ाकत और मुहब्बत छोड़ कर दुनिया से बिदा हो गया । पूर्व परम्परा के ऐसे गुण मेहर में भी दिखाई देते थे ।

कलकत्ता आने के बाद कइयों की खुशामद के फल स्वरूप उसे एक जगह बच्चों को पढ़ाने का ट्यूशन मिला । कहने को ट्यूशन था, वैसे एक छोटी-मोटी पाठशाला थी । करीब एक दर्जन लड़के-लड़कियों को पढ़ाना पड़ता था । मेहर के पहुँचते ही सारे बच्चे उसे घेर लेते और प्रत्येक लड़का पहिले पढ़ने की और पढ़ कर राजा बनने की फ़िक्र में रहता । एक कहता पहिले मुझे पढ़ाओ और दूसरा कहता मुझे । मास्टर एक और विद्यार्थी बारह । जिस लड़के को पहिले नहीं पढ़ाया, वही रोता हुआ पहुँचा अम्माँ के पास ।

बात यह थी कि उसने जो कुछ पढ़ा था वह पढ़ाने के उद्देश्य से नहीं पढ़ा था। पढ़ते समय उसकी बड़ी-बड़ी आशाएँ थीं। किन्तु जिस तरह “येषां क्वापि गत्विर्नास्ति तेषां वाराणसी गतिः”—जिसकी मुक्ति कहीं न हो उसकी मुक्ति काशीजी में हो जाती है, उसी तरह जिसे कोई काम नहीं मिलता वह अध्यापक बनने का सौभाग्य प्राप्त करता है। बेचारा मेहर भी विवश होकर उसी पद पर आसोन हुआ।

इस ट्यूशन के पीछे उसे बहुत परेशानी उठानी पड़ती थी। सुबह पाँच बजते ही उठना पड़ता, उठते ही हाथ-मुँह धोकर चलने की चिन्ता होती। उसका ट्यूशन था वालीगंज-नन्दन-वन में। जल्दी-जल्दी डग मारने पर भी साढ़े छः, पीने सात तक वहाँ पहुँचता। जिस दिन आँखें दस-पन्द्रह मिनट देर से खुलतीं उसी दिन आफत आ जाती। विद्यार्थियों में से तीन-चार लड़के स्कूल को जाते थे। दस पन्द्रह मिनट की देरी से एक न एक पढ़ने से रह जाता। अन्दर से कर्कश ध्वनि सुनाई देती ‘हिन्दुस्तानी लोग टाईम के पाबन्द नहीं होते। इन्हें भला दस-पन्द्रह मिनट की कीमत क्या मालूम।’ कहना न होगा जिसका यह स्वर था वह योरोप या अमेरिका का जीव न होकर हिन्दुस्तान का ही जन्तु था।

प्रायः ऐसी ग़लती हो ही जाती थी। मेहर को इसके लिए बार-बार माफ़ी माँगनी पड़ती, प्रतिज्ञा करता कल से ऐसा न करूँगा। किन्तु जीभ के इतना आश्वासन देने पर भी आँखें, जब मौका लगता, प्रतिज्ञा भंग कर देतीं।

कभी बच्चे पूछ लेते, मास्टर साहब, आपको आने में क्यों देर हो गई है ?

मास्टर साहब का एक ही उत्तर था ‘क्या करूँ, पैदल आना पड़ता है। देर हो ही जाती है।’

लड़के आश्चर्य से दूसरा प्रश्न करते ‘मास्टर साहब, इतनी दूर पैदल किस तरह आते हो ? आप के पाँव नहीं दुखते ?’

मेहर हँसे कण्ठ से उत्तर देता—जिस समाज में मैं पैदा हुआ हूँ उसमें किसी सवारी पर सवार होना गुनाह है।

बार-बार यही उत्तर सुन कर बच्चों के मन में मास्टर साहब के इस विचित्र समाज के बारे में बहुत से सवाल पैदा होते, किन्तु मास्टर साहब ज्यादा बात-चीत नहीं कर सकते थे। कुछ अधिक वार्तालाप हुआ कि भीतर से नारी की चिर-परिचित ध्वनि सुनाई देती, 'मास्टर साहब, यह पढ़ाई हो रही है या गप्पें उड़ रही हैं ? इस तरह बच्चे क्या खाक पढ़ेंगे ?'

मेहर को यहाँ पूरे छः घण्टे देने पड़ते थे। एक तरह से वह लड़कों की पढ़ाई पर निर्भर न रह कर घड़ी की सुइयों के आश्रित था। किसी दिन पाँच मिनट पहले चला जाता तो दूसरे दिन जवाब तलब किया जाता।

आये दिन अपमान की घूँट पीनी पड़ती थी। मास्टर साहब इसके अभ्यस्त हो गये। प्रति दिन अपने अध्यापक का अपमान देखकर विद्यार्थी गुरु का कितना आदर करते थे, यह बताने की आवश्यकता नहीं।

मेहर बच्चों को पढ़ाकर दो अढ़ाई तक घर पहुँचता, वहाँ चूल्हे से सर-पच्ची करनी पड़ती, तब पेट में रोटी पड़ती। महीना खत्म होने पर वेतन मिलता। दस रुपए मकान कियारा देना पड़ता, पन्द्रह रुपए में महीने भर गुजारना पड़ता।

×

×

×

जब ब्रिटिश गवर्नमेण्ट ने युद्ध के नाम पर अपरिवर्तनशील काल-चक्र को भी एक घण्टा पहले चलने के लिए बाध्य कर दिया तो मेहर की मुसीबतों का ठिकाना न रहा। इधर दिन पर दिन बढ़ती हुई महँगाई और अनाज की दुष्प्राप्यता से जीवन निर्वाह कठिन होता गया। समय पर न कोयला मिलता और न दूसरे पदार्थ, यदि अन्न लेने जाओ तो द्यूशन से हाथ धोओ और काम पर गये तो चूल्हा जलना मुश्किल।

कपड़े का तो पूछना ही क्या ? मेहर के पास ले दे कर एक कमीज साबित बची थी। उसी को धो-सुखा कर पढ़ाने जाता। जिस दिन कमीज न धुलती, लड़के कोरस में पुकारते 'मास्टर साहब गन्दे। हम आपके पास न बैठेंगे।' मेहर मन मसोस कर रह जाता।

नये समय के कारण अब नित्य देर होने लगी । इधर खाद्यान्न की दुष्प्राप्यता के कारण उसे अधिकतर रोज़ा रखने का सवाब मिलने लगा । द्यूशनवाले चेतावनी दे-देकर हार गये और इस खोज में थे कि कोई दूसरा मास्टर मिले तो जवाब दे दिया जाय । एक दिन मेहर को रुखसत मिल गई । जिस दिन इस नौकरी से छुट्टी मिली उस दिन उसे अपने पिता को मृत्यु से भी अधिक वेदना हुई । दुःख इसलिए नहीं कि उस नौकरी से कोई सुख मिलता था और वह अब छिन गया था, बल्कि इसलिए कि अब ज़िन्दगी का आधार वह दुःख भी नहीं रह गया था ।

बीस-पच्चीस दिन तक काम की तलाश में वह इधर-उधर चक्कर काटता रहा, पर कोई काम नहीं मिला । मेहर ज्यादा पढ़ा-लिखा नहीं था, यह बात नहीं । उसने काफ़ी शिक्षा पाई थी । हज़ारों रुपए खर्च करने पर यूनिवर्सिटी से दो तीन कागज़ के टुकड़े मिले थे ; जिन्हें मेहर के पिता ने बड़े चाव से फ्रेम में चढ़ाया था । उसके पास वे फ्रेम अब भी थे ; लेकिन उनपर अब काफ़ी धूल जम गई थी । वह जमाना गया जब इन कागज़ के टुकड़ों को दिखाने-भर से सौ-पचास की नौकरी बड़ी आसानी से मिल जाती थी । आजकल पन्द्रह-वीस को चपरासगिरी के लिए भी बहुत-सी चीज़ों की आवश्यकता होती है । मेहर उन फ्रेमों से लापरवाह रहा है और अब भी है । भूले-भटके भी उनपर नज़र न जाती थी । आज अकस्मात् उनपर इसकी दृष्टि पड़ गई । दूसरे ही क्षण सारे फ्रेम निर्ममता से नीचे पटक दिये गये । काँच दालान में फैल गया । कागज़ के टुकड़े-टुकड़े कर दिये । कागज़ के उन फटे टुकड़ों को पाँव से रौंद कर उसने सन्तोष की साँस ली ।

आज महीना पूरा हो गया । मकान मालिक को कल किराया देना पड़ेगा । मकानदार से कह दिया जाय ठहर कर दूँगा ? इससे वह क्या समझेगा ? और कह ही देने से क्या वह मान जाएगा ? बिना किराया दिये ही वह क्यों रहने देगा ? यदि वह अपने किरायेदारों को दो-चार महीने के लिए भी बिना किराया दिये रहने देता तो मकानदार कैसे बनता ? तब क्या यह जगह छोड़ देनी चाहिए ? चिन्ता में रात बीत गई ।

×

×

×

जिस दिन उसने घर छोड़ा, रमजान का महीना शुरू हुआ। मेहर के लिए तो शाबान भी रमजान था। दिन-भर वह इधर उर भटकता रहा। जो थोड़ा बहुत सामान था वह उसी कोठरी में छोड़ आया था। सन्ध्या समय एक जगह बैठ कर नमाज़ पढ़ी और नल का पानी पी कर रोज़ा खोला। फुटपाथ पर जैसे-तैसे रात बिताई। सुबह तीन-चार बजे से ही कुछ मूसलमान युवक 'सहरी करो', 'होशियार हो जाओ', 'सहरी करो' चिल्लाते हुए गली-गली घूमने लगे। ऊँचे-ऊँचे घरों से टकरा कर इन शब्दों की प्रतिध्वनि लौट रही थी। मेहर होशियार था, किन्तु सहरी के लिए उसके पास कुछ भी न था। वह उठा। उसने निकट के नल से हाथ-पाँव धोये, खुदा का नाम लिया। पेट-भर पानी पिया। दिन निकला और इसी तरह बीत गया। मेहर ने फिर पानी से रोज़ा तोड़ा। धीरे-धीरे रात के अँधेरे ने शहर को ढँक लिया। उसके पाँवों ने जवाब दे दिया। वह कहीं जाना चाहता था। किन्तु जान सका। सड़क पर इक्के-दुक्के आदमी चल रहे थे। मेहर फुटपाथ के पास बैठ गया। वहाँ दस-पन्द्रह भिखारी पहले से थे। कुछ लेटे हुए और कुछ बैठे हुए। कुछ भिखारी खिचड़ी खा रहे थे। जब खिचड़ी समाप्त हो गई तो वे पन्ते चाटने लगे और उन्हीं को चबा कर निगल गए।

मेहर जहाँ जा कर बैठा, एक अधेड़ आयु की स्त्री अपने बच्चों को खिचड़ी चटा रही थी। मेहर के बैठते ही चिल्लाई 'चल हट यहाँ से। क्या मेरे बच्चों को नज़र लगाएगा?' फिर इस स्त्री ने मुँह मोड़ लिया। बच्चों को अपने आँचल की छाया में छिपा लिया। सम्भवतः 'इन्द्राणी' ने 'जयन्त' को अमृत चटाते समय भी असुर दृष्टि से इस तरह न बचाया होगा। एक साधारण भिखारिन से तिरस्कृत होकर मेहर कुछ बोला नहीं। चुप रहा।

चारों ओर अंधेरा छाया हुआ था, घना अंधेरा। जिस नगर में रात दिन से अधिक प्रकाशपूर्ण रहती थी, वहीं अब सन्ध्या से अंधकार का राज्य रहता है। चारों ओर सुनसान था। आकाश नीरव। किन्तु भिखारियों के इस घेरे में नींद ने प्रवेश नहीं किया। एक ओर कोई बच्चा बड़ी देर से चिल्ला रहा था। माँ अपनी सूखी छातियों को, चमड़े के टुकड़ों को, बार-बार बच्चे के मुँह में ठूस रही थी और बच्चा उन्हें बाहर निकाल कर किलकारी भर

रहा था। अन्त में क्रोध से बालक ने छातियों को जोर से चबाया। माँ के मुँह से दबी चीख निकली। उसने बच्चे को जोर-जोर से मारना शुरू किया। मार के साथ बच्चे का रोना भी बढ़ा। बच्चे की आवाज़ क्षीण हो गई। वह सिसकियाँ भरने लगा। अन्त में चुप हो गया।

निकट ही नौ-दस बरस की बच्ची थी, पास ही उसकी माँ भी। बच्ची रह-रह कर चिल्ला रही थी। माँ रोने का कारण पूछ रही थी। बच्ची के मुँह से बोल नहीं निकल रहा था। माँ के झुँझलाने पर लड़की फूट-फूट कर रोने लगी। बोली—“मैं हाथ में खिचड़ी लिये आ रही थी। जैसे ही चौराहे पर पहुँची, तीन-चार कुत्ते मेरी तरफ दौड़े। मैं जैसे-जैसे भागी कुत्ते भी उसी तेज़ी के साथ दौड़े। मैं एक जगह ठोकर खा कर गिर गई। एक कुत्ते ने आते ही खिचड़ी पर झपट्टा मारा और दूसरा मुझ पर झपट्टा। तीन-चार जगह पर उन्होंने मुझ को काट खाया। कुछ लोगों ने मार-मार कर उन कुत्तों से बचाया। इन घावों में बहुत दर्द है माँ!” कहकर लड़की रोने लगी और साथ ही उसकी माँ भी।

जिन बच्चों को आज खाना नहीं मिला था वे रह-रह कर रोते थे और सिसकियाँ भर रहे थे। बीच-बीच में चिल्ला उठते—“अम्माँ, बड़ी जोर से भूख लगी है, री ! कुछ खिला दे।” और जोर-जोर से रोने लगते। माताएँ भी बच्चों के साथ रोने लगतीं। कभी झिड़क कर और कभी पीट कर बच्चों का मुँह बन्द करना चाहतीं।

दूर की घड़ी से दो बजने की ध्वनि आई। यहाँ नींद किसे आती थी। सब के पेटों में आग धधक रही थी। कुछ धीरे-धीरे कराह रहे थे। रह-रह कर करवटें ली जा रही थीं। इसी समय आकाश से मूसलाधार पानी पड़ने लगा। लोग गिरते-पड़ते छाया की खोज में चले। पाँच-छः स्त्रियाँ उठ नहीं सकती थीं। विवश, वहीं भीगती पड़ी रहीं। मेहर उठकर एक दूकान की छाया में पड़ गया। अभी दस-पाँच मिनट भी नहीं बीते थे कि वहाँ छाया की तरह लड़खड़ाती एक स्त्री आई और धड़ाम से गिर गई। मेहर उसके पास पहुँचा। उसने देखा—

एक छोटा-सा बालक उस स्त्री के स्तन को मुँह में दबाये चिपटा है । मेहर ने बड़ी कठिनाई से बच्चे के मुँह से स्तन छुड़ाया । बच्चे को हटाते ही वह स्त्री उठ बैठी और बोली —“अरे मेरे लाल को कौन छीनता है ?” और फिर धड़ाम से गिर गई । मेहर ने उस बच्चे के पेट पर हाथ रख कर देखा, पेट का चमड़ा चिपक गया था । बच्चा पन्द्रह दिन से अधिक का नहीं था ! किन्तु उसमें बाल-सुलभ कोमलता नाम को नहीं थी । वह पत्थर से भी कठोर था । मेहर ने बच्चे की नाक पर हाथ रखकर देखा, बच्चा संसार से विदा ले चुका था ।

स्त्री नीचे पड़ी भोग रही थी । पानी मूसलाधार बरस रहा था । मेहर ने उस स्त्री को उठा कर छाया में सुलाया । ‘स्वयं’ भीगने लगा । दूकान में से निकलनेवाले क्षीण प्रकाश में उसने देखा वह स्त्री हड्डी का ढाँचा भर शेष रह गई है, लेकिन उसको आँखें, नाक आदि अंग सुन्दर थे । उसने सोचा स्त्री भिखारिन नहीं है । इसी समय स्त्री का शरीर काँपा । मेहर भीगता रहा, निश्चल पत्थर की तरह ।

दिन निकला । नित्य की तरह लोग सड़क पर चलने-फिरने लगे । मेहर की नज़र रातवाली जगह पर गई । पानी से अकड़ी पांच-छः औरतों की लाशें पड़ी थीं । थोड़ी देर में कुछ लोग आये और उन लाशों को ठेले में डाल कर चलते बने । उन लोगों के मुँह पर न घृणा थी और न विषाद, मानों इस कार्य में बचपन से अभ्यस्त हों । जब वे लोग मेहर की पासवाली स्त्री को घसीटते हुए ठेले के पास ले गये तब मेहर की आँखों से बरबस दो बूँदें टपक पड़ीं ।

मेहर का शरीर गिरा पड़ता था । वह खड़ा नहीं हो पाता था । उसके रोम-रोम में चारों ओर बिच्छुओं के दंशन की पीड़ा थी । उसका शरीर जल रहा था । दस-ग्यारह बजे तक वह पास के पेड़ की छाया में पड़ा रहा । एकाएक उसके मन में आया जामा मस्जिद पहुँचना चाहिए । वह बारह बजने के बाद रह न सका । चल पड़ा । पैर लड़खड़ा रहे थे । पर वह आगे कदम बढ़ाता गया । बिजली के खम्भों का सहारा ले-लेकर, ठहर-

ठहर कर, हिम्मत बाँध कर कदम बढ़ाता । कदम-कदम पर हाँफने लगता, फिर भी आगे ही कदम रखता । कई जगह बैठता, उठा, और चला । प्यास से मुँह सूख रहा था । जीभ पर काँटे पड़ गये । प्राण ओठों तक आ रहे थे । मस्तक चकरा रहा था । इसी समय उसकी नजर एक नल पर गई । नल खुला था । उसमें से धगधग करता पानी निकल रहा था । मेहर के पैर एकाएक नल की तरफ बढ़े । वह दूसरे क्षण नल के पास था । उसके हाथ आगे बढ़े । पानी भरी अंजली मुँह की ओर चली । एकाएक हाथ काँपा और अंजली का पानी जमीन पर ढुलक गया । मेहर बड़बड़ाया “नहीं, नहीं, यह नहीं हो सकता । मैं बीस बरस से रोज़ेदार हूँ । लगातार बीस बरस से । क्या मैं आज अपना व्रत तोड़ दूँगा ? नहीं, यह नहीं हो सकता । एक घूट पानी के लिए ? नहीं-नहीं, अमृत के लिए भी नहीं ।” वह सड़क की ओर घूम गया । उसका माथा घूम रहा था । आकाश चूमनेवाले सात-सात मंजिल के मकान घूम रहे थे । आकाश घूम रहा था । जमीन सरक रही थी । उसके पैर लड़खड़ा रहे थे । उसे पता नहीं था, वह कहाँ है, कहाँ जा रहा है ? वह चला जा रहा था ।

जामा मसजिद के पास पहुँचते-पहुँचते पाँच बज गये । जो मुस्लिम होटलें दिनभर सुनसान पड़ी थीं, जहाँ मक्खियाँ भिनभिना रही थीं, रोज़ेदार मुसलमान आ-आकर कुर्सियों पर जमने लगे । रेडियो बजने लगा । चहल-पहल हुई । छाँक की सुगन्ध और मलली तलने की दुर्गन्ध आ रही थी । होटलों के बाहर बड़े-बड़े साईन बोर्डों पर लिखा था, रमज़ान के लिए स्पेशल ‘फ़ालूदा’ और ‘हरीस’ । लेकिन यह स्पेशल चीज़ें उन्हीं के लिए थीं, जिनके पास रमज़ान के लिए स्पेशल पैसे भी हों । गिरता, हटता, सोता, उठता, बैठता आखिर मेहर जामा मसजिद पहुँचा । अब उसके पावों ने बिलकुल जवाब दे दिया था । बैठ-बैठ कर, लेट-लेट कर उसने मसजिद की सीढ़ियाँ पार कीं और ऊपर जा कर वह एक कोने में पड़ गया । धीरे-धीरे रोज़ेदार मुसलमानों का मसजिद में जमघट लगने लगा । आनेवालों में बच्चे थे, जवान थे और बूढ़े भी थे । सब अपने साथ तोशेदान

ला रहे थे । किसी के लिए 'ग्रांड होटल' से खाना आ रहा था और किसी के लिए 'रायल' होटल से । लोगों ने आते ही अपने अपने दस्तरखान बिछाये और उन पर वे अपना-अपना खाना जमा कर बैठ गये । रोज़ेदारों की निगाह कभी घड़ी पर जाती है, कभी खाने पर । घड़ी की सुई के साथ-साथ उनका मन भी भोजन के लिए घूम रहा था । बच्चे उछल-कूद मचा रहे थे, जवान गप-शप मार रहे थे और बूढ़े अपनी मालाएँ निकाल कर फेर रहे थे । मेहर एक कोने में पड़ा बड़बड़ा रहा था । उसकी तरफ़ नजर डालने की किसे फुर्त थी । एक तरफ़ फटे-पुराने, मैले-कुचैले कपड़े पहिने ग़रीब रोज़ेदार बैठे थे ।

इसी बीच कुछ लोग अपने नौकरी पर थाल खाये वहाँ पहुँचे । फिर क्या था, चारों तरफ़ से रोज़ेदारों ने उनको घेर लिया । धक्कम्-धक्का होने लगा । प्रत्येक आदमी इस कोशिश में था कि भोजन पहले उसे मिले । मेहर की आँखें खुलीं । वह उठा । उसके पैर भी लड़खड़ाते हुए उसी तरफ़ चल पड़े । उसने भी आगे बढ़ कर हाथ पसारा । किन्तु उसका हाथ काँप गया । मुँह लज्जा से झुक गया । वह पीछे हटा ।

मेहर गिरता-पड़ता पानी के हौज़ को तरफ़ बढ़ा । हौज़ के किनारे पहुँच वह पानी के लिए ज्योंहीं झुका उसके पाँव लरज गये । वह धड़ाम से हौज़ में गिरा । आसपास के कुछ आदमी हौज़ पर पहुँचे । एक ने हौज़ में कूद कर मेहर को बाहर निकाला । दस-पन्द्रह मिनट के बाद मेहर के हाथों में कम्पन हुआ । धीरे-धीरे हाथ गाल के पास गये । उसने हाथ से पहले बाँया गाल छुआ और बाद में दाहिना । उसकी यह तोबा गुनाहों के लिए थी या हिन्दुस्तान जैसे बदनसीब देश में पैदा होने के लिए अनुमान नहीं लगाया जा सका । कुछ क्षण बाद वह छटपटाया और सदा के लिए शान्त हो गया । लोगों ने कहा—“अरे, कोई भूखा था बेचारा ! मर गया । पुलिस को इतिला दे दो । ”

थोड़ी देर बाद उठाने वाले आये और उठा कर ले गये । लोग अपना भोजन करने लगे । कोई अपने राग की तारीफ़ कर रहा था और कोई पकोड़ियों की । मानो वहाँ कुछ हुआ ही नहीं !

हलाहल

मैं कलकत्ता मेल से उतरा था, और “ग्राण्ड-ट्रंक” से मद्रास जाना चाहता था। ग्राण्ड-ट्रंक लेट थी, इसलिए नागपुर स्टेशन पर कुछ घंटे रुक जाना पड़ा। किसी स्टेशन का, विशेष कर बड़े स्टेशन का, वातावरण मन को उदास बनाने के लिए पर्याप्त होता था। विविध आकृति के सैकड़ों-हजारों नर-नारियों का ताँता लगा रहता है। उधर से एक गाड़ी आई, हजारों की भीड़ लग गई। इधर से गाड़ी गई, मैदान साफ़ दिखाई देने लगा। एक दूसरे को देखते हैं, पास-पास बैठते हैं, किन्तु परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं। बात करेंगे तब उड़ती-उड़ती। और बार-बार हमारा मस्तिष्क हमें वहाँ छोड़कर न जाने कहाँ चक्कर काटता रहता है। दूर की यात्रा करने वालों के कान गाड़ी की गति और पहिये के सुर-ताल से ऐसे पक जाते हैं कि हम सुनकर भी कुछ नहीं सुनते। इस परायेपन को देख-देख कर मैं उकता गया और उदासी दूर करने के लिए प्लेट-फार्म के चक्कर काटने लगा। प्लेटफार्म पर लोगों का कोलाहल वैसे कुछ कम नहीं होता, लेकिन हमारी विकलता उस समय अधिक बढ़ जाती है जब वाणी के इस महासागर में भी कबीर के शब्दों में “पानी में मीन पियासी....” की तरह हम एक शब्द भी नहीं समझ पाते। अकेले लम्बी यात्रा करते समय किसी से बात करने की स्वाभाविक इच्छा होती है। उस समय यह अभाव विशेष रूप से खटकने लगता है। हम चाहते हैं, हमसे कोई बात करे। इस कोलाहल के बीच “गरम चाय” “पकौड़ी भजिए” “साग-पूरी गरमा गरम” की चोख वैसे ही लगती है जैसे कौओं की काँव-काँव में गिद्धों और चीलों की आवाज़ शामिल हो गई है। मैं प्लेटफार्म का एक से अधिक चक्कर न लगा सका। अपने बिस्तर-बन्द पर बैठ गया। एक ही दृश्य देखते-देखते मेरी आँखें और कर्कश कोलाहल को सुनते-सुनते कान थक गये। आँख बन्द कर मैं अपने आपको इस वातावरण से दूर करने की चेष्टा करने लगा। गाड़ी की प्रतीक्षा थी ही। सीटी की ध्वनि कान में पड़ते ही पटरियों पर दूर तक नज़र डाल लेता और जब देखता कि सिगनल भी नहीं गिरा तो मन ही मन रेल वालों को कोसता। आँख बन्द किये ऊँघने का प्रयत्न करता।

उसी समय लड़के-लड़कियों के एक झुण्ड ने मेरी आँखें खोलीं “बाबू जी, बहुत भूख लगी है। कुछ खाने को दो मेरे दाता !”

इस वाक्य को एक साथ, जैसे कोरस में-सब दुहरा रहे थे। किसी की आयु दस-ग्यारह वर्ष से अधिक नहीं थी।

सब का अजीब हाल था। बाल यों ही बढ़े हुए। लड़कियों के बाल उलझे हुए और बालिष्ठ भर से बढ़े नहीं। भट्टे और बेढंगे। लड़कों के बाल इधर-उधर बिखरे हुए, लापरवाही के कारण मटमैले पड़ गए थे। इन बालकों को देखकर इतनी अरुचि हुई कि क्षण भर के लिए मैंने अपनी आँखें बन्द कर लीं। मुँह पर काफी मैल जमा था, ओठ फटे हुए, आँखें कीच भरीं। और नाक नीचे की ओर ढँक-सी गई थी। हाथ-पाँवों पर मैल के कारण टेढ़ी-मेढ़ी अनेक लकीरें पड़ गई थीं। हाथ-पाँव सींक जैसे। कमर ने सत छोड़ दिया था। कपड़े के नाम पर दो-तीन चिन्दियाँ, जिन्हें एक दो स्थानों पर यों ही कस लिया गया था। देखने पर ज्ञात हुआ, जैसे भगवान शंकर के गण—भूत-प्रेतों के बालक श्मसान से उठकर सीधे यहीं चले आये हैं।

घर से कुछ भोजन साथ लाया था। मैंने समूचा भोजन उन लोगों को दे दिया। भोजन पाते ही सब के सब उछलते-कूदते दूर चले गये। उनकी सारी दीनता, सारी गरीबी, सारी नम्रता एक बार ही न जाने कहाँ विलीन हो गई ! एक दूसरे को छँटी-छँटी गालियाँ सुनाने लगा। उनके लिए वहाँ जैसे कोई न था। मैं भी नहीं था, जिसने उन्हें उनकी दीनता और नम्रता के कारण दो क्षण पहले भोजन दिया था। एक लड़के ने दूसरे को चपत जमाई और उस दूसरे बालक ने ऐसी टाँग मारी कि वह चित्त हो गया। वह लड़का ज़मीन से उठा तो उसके चेहरे पर क्रोध नहीं था, वह खिलखिलाकर हँस रहा था। सारा भोजन उन्होंने फटे कपड़े पर डाला और देखते-देखते सब कुछ चट हो गया। किसी ने निरी पूरी खाई तो किसी ने केवल साग पर ही हाथ साफ किया। किसी ने कम खाया, किसी ने ज्यादा, किन्तु किसी को कोई शिकायत न थी। एक सज्जन ने अध-जली सिगरेट पीकर फेंकी। समूह के एक लड़के ने उसे उठा लिया और फिर सब बारी-बारी से घूँट भर-भर कर हवा में छल्ले बनाने लगे ! एक स्त्री

ने खाने के बाद दो-तीन पूरियाँ और साग से सना हुआ टुप्पा फेंका तो सब के सब झपटे । हाथा-पाई हुई । एक लड़के ने टुप्पा उठा लिया और पूरी का कुछ हिस्सा दाँत से तोड़ कर दूसरे लड़के को दे दिया । सब के हिस्से में एक-एक घास आया ! मैंने उस दृश्य से अपनी आँखें हटा लीं, किन्तु वह दृश्य आगे से न हटा । लड़कों का वही झुण्ड, उनका वह उच्छिष्ट भक्षण, उनकी निर्धृणता सब एक-एक करके मेरे मन को उद्विग्न करने लगीं । इन लड़कों के मुँह पर दुनिया-भर की दीनता और नम्रता दिखाई देती है और दूसरे क्षण ही लगता है इन बालकों में कूट-कूट कर उद्विग्नता भरी हुई है । कोई चिन्ता नहीं, तृप्त और लापरवाह ! मैंने आँख उठाकर देखा, उस झुण्ड ने एक भोले भाले आदमी को घेर लिया है, और उसके कुछ न देने पर वे उसकी खिल्ली उड़ा रहे हैं । बेचाराबचने के लिए जहाँ जाता है, यह झुण्ड भी वहाँ पहुँच जाता है । वह जितना घबराता है, उतना ही इन बालकों की हिम्मत बढ़ती है ।

मेरे आगे वैसे ही दो लड़के और आ खड़े हुए । दोनों एक ही आयु के । वेश-भूषा, हाव-भाव और आकृति इतनी मिली-जुली कि दोनों को अलग करके पहचानना कठिन था । एक फटी-सी लंगोटी लगाये, गले में तार-तार बना हुआ कपड़े का टुकड़ा लपेटे, इन्होंने भी अपनी अभ्यस्त विनय से माँगा, लेकिन इस बार इन्हें कुछ देने की इच्छा नहीं हुई । लड़कों ने अपनी विनय को कई गुना बढ़ाकर माँगना शुरू किया । मुझे कुछ जिज्ञासा थी, अतः मैंने कुछ देकर दाता और भिक्षुक में अन्तर उत्पन्न नहीं करना चाहा । मुस्कराने का प्रयत्न करते हुए मैंने मित्रता के भाव से उनसे पूछा :—

“तुम दोनों मद्रास चलोगे ?”

“क्या मद्रास का स्टेशन भी नागपुर इतना ही बड़ा है ?”

“इस से भी बड़ा ! लेकिन तुम्हें स्टेशन से क्या लेना है ?”

“हमें स्टेशन ही पर तो रहना है । स्टेशन जितना आराम कहीं है ? यहाँ कितनी तरह की चीजें खाने को मिलती हैं । मारवाड़ी, गुजराती, बंगाली, महाराष्ट्रीय, न जाने कहाँ-कहाँ के लोग आते हैं । उन सब के साथ अपने यहाँ

का भोजन होता है। एक से एक बढ़िया। हम लोगों ने यहाँ जितनी तरह की मिठाइयाँ और साग खाये हैं, आप उतने नाम भी नहीं जानते होंगे।”

“नाम तो तुम भी नहीं जानते होगे।” मैंने उन्हें हँसाने के लिए यों ही प्रश्न किया।

“क्यों नहीं जानते। हमें सब मालूम है। अगर किसी चीज़ का नाम नहीं मालूम तो हम उसका नाम रख लेते हैं। हम लोग जितनी जल्दी नाम रख सकते हैं आप लोग नहीं रख सकते ! यहाँ रात-दिन गाड़ियाँ आती रहती हैं, कुछ न कुछ खाने को मिल जाता है। कभी कुछ पैसे भी हाथ आ जाते हैं। कोई खुशी से देता है, किसी से छीन लेते हैं। कोई खाने बैठे तो उसे गिद्धों की तरह घेर लेते हैं और फिर ऐसा तंग करते हैं कि वह एक घास भी नहीं खा सकता ! कुछ भी न मिले तो केवल पत्ते चाटते-चाटते पेट भर जाता है। मेला लगा रहता है। आप ही कहिये आपका मन स्टेशन छोड़ने को करेगा ?

मैंने बात बढ़ाने के लिए ऊपरी दिल से कहा—“हाँ, है तो बड़ा आनन्द।”

“सच कहता हूँ बाबूजी ! ऐसा सुख कहीं सपने में भी नहीं मिलेगा। ये पुलिस वाले डण्डे मार-मार कर हमें बाहर निकालते हैं। कल इस मिट्टू पर कितनी मार पड़ी ! इसके मुँह से खून बहने लगा, लेकिन यह बदमाश आज फिर आ गया।”

“अपनी तो कहो। उस दिन दारोगा जी ने एक डंडा हो टिकाया था कि सारी हिम्मत काफूर हो गई थी। और लगे थे पाँव पड़ने, हाथ जोड़ने ! कहने लगा, माई-बाप अबकी माफ़ कर दो, फिर यहाँ पाँव नहीं धरूँगा। मुझ पर चोर की तरह मार पड़ी, लेकिन मैंने उसके आगे हाथ तो नहीं जोड़े ! मर्द मार खाकर रोते नहीं, मार खा-खा कर हिम्मत बढ़ती है।”

“निकालूँ तेरा मर्दपना ?”

उन दोनों में हाथा-पाई शुरू हुई। अच्छा मनोरंजन हो रहा था, किन्तु मुझे उनके बारे में अधिक जानना था, अतः मैंने कहा—

“मिट्टू, तुम बड़े अच्छे लड़के हो। यह बताओ, तुम्हारे इस दोस्त के घर में कोई सगा-सम्बन्धी नहीं है ?”

“है क्यों नहीं ? इस साले की बूढ़ी माँ है । बेचारी दिन-भर मेहनत मजदूरी करके गुज़र करती है । इसे अच्छा खाना देती है, पहिनने के लिए कपड़े देती है । कभी चला जाता है । एक दो दिन रहता है । फिर बुढ़िया से कहता है—कुछ पैसे दो । बुढ़िया कहती है कि बेटा तुम अच्छा भोजन करो, अच्छा पहनो, लेकिन पैसों का नाम न लो ! यह बुढ़िया पर हाथ उठाता है, बाबूजी ! बेचारी की जोड़ी हुई पूँजी छीन लाता है । बदमाश को अभी से जुए की लत पड़ गई है । दूसरे दिन सब खोकर फिर अपनी जगह पहुँच जाता है ।”

“बस, ज्यादा बात न बना । तुम्हारी सारी कलई खोल दूँगा ! बाबूजी, इसका भाई देवता है देवता ! जहाँ पाता है, पकड़ कर घर ले जाता है । लड़ से समझाता है, प्यार से समझाता है । धमकाता है । इसकी मिन्नतें करता है, लेकिन यह है कि कभी उसका नाम तक नहीं लेता । एक दिन मैं इसकी गली से निकला, हमारे पड़ोस में तो रहता ही है, इसकी भाभी दरवाज़े पर कुछ काम कर रही थी । मुझे देखकर बेचारी की आँखें डबडबा आईं । उसने रोते-रोते पूछा—“तूने हमारा मिट्टू देखा है ? आठ-दस दिन से उसका पता नहीं । जाने कहाँ चला गया ? ऐसी भाभी को पाऊँ तो घर से बाहर पाँव न रखूँ । मुझे कसम खा लीजिये !”

इसी समय मिट्टू की कमर पर पट्-पट् करके दारोगा जी के दो डण्डे पड़ गये । दारोगा तीसरा बार करे कि दोनों लड़के नौ दो ग्यारह हो गये । दारोगा हर साँस में एक दर्जन गालियाँ देता रह गया । दूर जाकर दोनों लड़के हाथ हिला-हिला और मुँह बना-बना कर दारोगा को चिढ़ाने लगे । बेचारा दारोगा झुँझला कर रह गया । यदि वे लोग मुझसे बातों में न लगे होते तो शायद दारोगा उन्हें कोई दण्ड नहीं दे सकता था ।

गाड़ी प्लेटफार्म पर लगी और मैं एक डिब्बे में सवार हो गया । गाड़ी सीटी दे चुकी थी, इतने में एक बारह-तेरह वर्ष की लड़की मेरे डिब्बे के पास आकर रुकी और इस तरह पथराई-सी आँखों से देखने लगी जैसे कुछ देखा नहीं

रही हो। उसने मुझ पर एक दृष्टि डाली और फिर सिर झुका कर खड़ी हो गई। उसने कुछ कहा नहीं।

“तुम्हें कुछ चाहिए?”

उसने बिना सिर उठाये अपना दाहिना हाथ मेरे आगे कर दिया। उसका हाथ काँप रहा था। मैंने उसके हाथ पर अठनी रख दी। धन्यवाद दिये बिना ही वह धीरे-धीरे लौट गई। एक साथ इतनी आसानी से इतने पैसे मिलने की प्रसन्नता उसकी आकृति पर दिखाई न दी।

गाड़ी चल दी। स्टेशन आये और गये। न मैं किसी की भाषा समझता था और न मेरे खाने योग्य चीज़ स्टेशनों पर मिलती थी। भूखा-प्यासा मद्रास पहुँचा। मार्ग में आँखों के आगे वही लड़के और लड़कियाँ घूम रही थीं। हिन्दुस्तानी नगर का कोई चौराहा इस प्रकार के बालकों से शून्य नहीं मिलेगा, किन्तु इस बार मैंने प्रत्येक बड़े स्टेशन पर ऐसे लड़के-लड़कियों को कम संख्या में नहीं देखा, जो इस प्रकार की आवारागर्दी में अपनी प्रतिभा, अपनी शक्ति नष्ट कर रहे थे। देश के उपवन की असंख्य कलिकाएँ खिलने से पहले ही मुरझा जाती हैं।

अपना काम करके दो-तीन दिन मैं ही मैं लौट रहा था। वही लड़कों का झुण्ड। सारे लड़के हट जाते और आ खड़ी होती वह अबोध निश्चल बालिका, जिसकी आकृति पर कोई कृत्रिमता, किसी प्रकार की चंचलता न थी, जिसकी कुलीनता ने उसके नेत्रों को निगाह उठा कर देखने से रोक दिया था। गौरव और प्रतिष्ठा ने जिसे मूक बना दिया था और वृत्ति की तुच्छ अनुभूति से जिसके पाँव बोझल बन गये थे। नागपुर आया। द्वितीय श्रेणी के बेटिंग रूम में अपना सामान रखकर मेरी आँखें इस लड़की को खोजने लगीं। जल्दी ही वह लड़की दिखाई दी, एक कोने में बैठी कुछ खा रही थी। मैं उसके निकट गया। उसे पाँच रुपए का नोट देकर लौट रहा था, मैंने देखा उसकी आँखें कृतज्ञता से भर आई हैं।

स्नान आदि से निवृत्त हो मैं अपनी गाड़ी की राह देखने लगा। चार-पाँच दिन तक साहबो पोशाक में जकड़-बन्द रह कर तंग आ गया था। मैंने सूट

तहा कर रख दिया और धोती तथा नेहरू कुर्ता पहन लिया था। कुछ लड़कों ने आकर माँगना शुरू किया। किन्तु इस बार उन्हें कुछ देने की इच्छा नहीं हुई और न मैं उन लोगों से बात करना चाहता था। छः-सात मिनट बाद मैंने देखा वही लड़की दूसरे प्लेटफार्म पर खड़ी मुझे धूर-धूर कर इकट्ठक देख रही है। अपने पहले आचरण के विपरीत वह तेज़ी से कदम बढ़ाती हुई मेरे पास आई और मेरी आँखों में अपनी आँखें गड़ाती हुई बोली—

“आप हिन्दू हैं ! आपने मुझे पहले क्यों नहीं बताया ? यह अपना नोट अपने पास रखिए ! मुझे इसका आवश्यकता नहीं।”

नोट मेरी ओर फेंक कर वह तो तेज़ी से उलटे पाँवों लौट गई। उसके नेत्रों में कितनी घृणा थी ! द्वेष और घृणा की आग आँख के पर्दों के पीछे धधक रही थी। मैं कुछ क्षणों के लिए सन्न-सा रह गया। मेरी इस अवस्था को देखकर लड़कों की टोली में से एक ने कहा—“बाबूजी, उसकी बात पर मत जाइए। समुरी मुसलमान है। पन्द्रह-बीस दिन से यहाँ है। नागपुर की नहीं है। किसी से सीधे मुँह बात करना तो जानती ही नहीं। हम लोगों से हमेशा कतराती है, जैसे छाया बचा कर चलना चाहती है।”

“क्यों रे रहमान ?” लड़के ने अपने दूसरे साथी की ओर मुँह करके प्रश्न किया—तुझ से वह क्या कहती थी उस दिन ? यही कहती थी न, तू मुसलमान होकर हिन्दू लड़कों के साथ क्यों रहता है ? फिर मेरी ओर घूम कर उसने आवेश से कहा, “लेकिन बाबूजी रहमान ने भी उसे ऐसा जवाब दिया कि उसका बोल बन्द हो गया। इसने कहा भिखमंगों में जात-पाँत काहे की ? क्या हिन्दू, क्या मुसलमान ? हम भिखमंगों की भी कोई जात होती है ? सब भिखमंगे हैं। उस दिन से समुरी रहमान से भी बात नहीं करती। इससे उसने एक दिन कहा था, उसका बाप बम्बई में रहता था। अच्छा खाता-पीता था। माँ थी, भाई-बहन थे। अभी जो हिन्दू मुस्लिम दंगा हुआ न, उसमें हिन्दुओं ने इसके घर को चारों तरफ से घेर लिया था। जो कुछ था लूट लिया और घर में आग लगा दी। माँ-बाप, भाई-बहन सबकी बोटी-बोटी कर दी गई। इसने अपनी आँखों सब कुछ देखा। किसी तरह यह बच गई। इस

पर किसी ने हाथ नहीं उठाया । यह अपने किसी मगे-सम्बन्धी के पास नहीं गई । भटकती-भटकती यहाँ चली आई है । राम जाने सच कहती है या सब बातें मन-गढ़न्त हैं । लेकिन माँग कर खाती है और रहती ऐसी है जैसे कोई नवाबजादी हो । हिन्दुओं को देख-देख कर कुढ़ती है । किसी अच्छे मालदार हिन्दू परिवार को देखकर मारे क्रोध के इसकी आँखें जलने लगती हैं । उनके पास नहीं जाती । मुसलमान आता है तो उसके आगे, बिना कुछ कहे हाथ आगे बढ़ा देती है । कोई लाख कोशिश करे, मुँह से बात नहीं निकालती । बनना खूब आता है । हिन्दू कुछ देता है तो फेंक देती है । न जाने आप लोग भी इसे ही क्यों देना चाहते हैं ! देखिए आप ही ने हमें फूटी कौड़ी न दी, इसे पाँच का नोट दे दिया !'

गाड़ी चल चुकी थी । मुझे ध्यान आया मेरे सूट में रहने से वह मुझे मुसलमान समझती रही और दोनों बार उसने मेरे पैसे ले लिये । लेकिन जब उसने मुझे हिन्दू वेश में देखा तो उसे बेहद पश्चाताप हुआ । इससे अधिक मैं न सोच सका ! मन में मैं अपने आपसे प्रश्न पूछ रहा था—क्या यह हलाहल विष देश के नागरिकों के अन्तस्तल में इतना गहरा पैठ चुका है ?

— × —

प्रतिक्रिया

रहीम उस समय चौदह-पन्द्रह का रहा होगा ।

आज दीवाली है । अमावस्या की अंधेरी रात में आकाश अस्पष्ट दिखायी देता है । अंधियारे में तारे अधिक साफ और आकर्षक लगते हैं । अमावस्या की तमपूर्ण रात्रि को पार्श्व भूमि में रखकर मर्त्य लोक के मावव ने दीपावली का आयोजन किया । गली, सड़क और चौराहे दीप-मालाओं से जगमगा रहे थे । गृहस्थों के घर, व्यापारियों की दुकानें, ग्वालों की गौशालाएँ, सर्वत्र दीप सजाये गये । दुकानों में झाड़ू-फानूस, काँच-पात्र और कागज की तूमड़ियों से आनेवाला मोमबत्ती का शीतल, कोमल प्रकाश विविध रंगों में ढल रहा था कि सड़क पर चलनेवाला राहगीर उस आलोक में अपने को क्षण में पीला, क्षण में लाल और क्षण में हरा या गुलाबी रंग में रँग पाता । क्षण-क्षण में रँगों का परिवर्तन हृदय में उल्लास और आनन्द उंडेल रहा था ।

रहीम ने अपने बाप से आग्रह किया, हम भी दीवाली देखने जायेंगे अब्बा, और अब्बा ने नौकर को आदेश दिया, इसे जरा रोशनी तो दिखा लाओ । भीड़ में बिछड़ न जाना । हाथ पकड़े रहना । और देखो दूर जाने की जरूरत नहीं, जल्दी ही लौट आना ।

रहीम की माँ ने नौकर को आगाह किया, होली दीवाली की रात है, इस दिन टोने-टिमके बहुत चलते हैं । बचाकर ले जाना ।

और चलते समय माँ ने चुपके से नौकर के हाथ में रुपया देकर कहा, मुन्नू की पसन्द की मिठाई या दूसरी चीज खरीद लेना ।

रहीम ने घर से बाहर, पड़ोसी के चबूतरे पर कतार में अगणित दीपक जलते देखे । दूर से लगा, यह उजाला अलग-अलग दीपकों से न बिखर कर सब दीपकों से एक साथ, अखंड रूप में निकल रहा है । दुमंजिले, तिमंजिले पर एक कतार में जलनेवाले मिट्टी के दीप और बिजली के गोलों का प्रकाश स्थिरता में भी चंचल था और उसकी झमझमाहट के साथ यह चंचलता ज्यादा सुहावनी थी । बालक इस दृश्य को देखता रह गया ।

छोटे बड़े बालक दीपकों को घेरे फुलझड़ियाँ और पटाखे चला रहे थे । कहीं अनारदाना भुरभुरा रहा था, कहीं बिच्छू की करामात थी और कहीं बिजली के तार का आँखों को चकाचौंध करनेवाला प्रकाश । पटाखों का आलोक या ध्वनि क्षण में विलीन हो जाती किन्तु बालकों का मुक्त हास्य देर तक न रुकता । बड़ों के लिए बच्चे फुलझड़ी थे और बच्चों के लिए बारूद की फुलझड़ियाँ थीं ।

चारों ओर दीवाली का प्रकाश है । प्रकाश ही प्रकाश है और इस प्रकाश के सागर में अपनी डरावनी काली छाया लिये खड़ा है केवल उसका अपना घर । उसकी घर की बैठक में एक गोला टिमटिमा रहा है । जैसे मुहल्ले भर की मनहूसियत और कालिख सिमट कर उसके घर पर जमा हो गयो है । उसका घर जिन्न या शैतान की तरह हमेशा एक ही शक्ल-मूरत, रूखे-सूखे बाल, भयानक दाँत और ऊपर गहरी कालिख की चादर ओढ़े है । रहीम का जो हुआ मैं इस अँधेरे घर में जितनी देर तक न आऊँ, अच्छा । प्रकाश में जितनी देर रह सकूँ, अच्छा ।

रहीम को पिछली दीवाली की याद साल भर बनी रही । उसे यह त्यौहार खूब पसंद आया था, इसी लिए वह इसको राह देखता रहा । आस-पास के घरों में खड़िया-चूना होता देख उसने माँ से कई बार जानना चाहा, माँ हम लोग दीवाली क्यों नहीं मनाते ? मुझे दीवाली बहुत अच्छी लगती है ।

न तो माँ उसे समझा सकती थी कि दीवाली हमारे घर में क्यों नहीं मनायी जाती और न वह लड़का समझाने पर समझ सकता था । माँ ने बहाना बनाकर टाला—बेटा, पहले हमारे यहाँ दीवाली मनती थी, एक दिन पीर साहब तेरे अब्बा को सपने में बोले कि तुम लोग दीवाली मनाओगे तो अच्छा नहीं होगा ।

पीरों की बहुत-सी कहानियाँ उसने सुनी थीं । बालक के दिल में पीर की जो तस्वीर थी वह एक दयालु और रहमदिल प्राणी की थी । बच्चे का भोलापन सोचने लगा, पीर साहब दीवाली से नफरत क्यों करेंगे ? फिर सपने में मैं क्या-क्या देखता हूँ ? परसों अब्बा जान कह रहे थे, सपना झूठा होता है, इसलिए उससे डरना नहीं चाहिए ।

रहीम ने अपने अब्बा से पूछा । माँ ने उत्तर के लिए जिस बनावटी किस्से का सहारा लिया था, उसके बारे में अब्बा को पता न था । उन्होंने साफ-साफ कहा, मुसलमान हिन्दुओं के त्यौहार नहीं मनाते बेटा ।

छोटी उम्र का लड़का इस तर्क को पूरी तरह नहीं पचा सका । उसे मालूम था वह मुसलमान है और पड़ोस में हिन्दू रहते हैं । वह हिन्दू लड़कों के साथ बराबर रोज खेलता था, और उसे मालूम था कि उन सब में कोई फरक नहीं है । फिर उसकी समझ में न आया कि मुसलमान दीवाली क्यों नहीं मनाते ? मनाने में क्या नुकसान होता ? अगर मनाते तो हमारे घर भी इतने अच्छे लगते । अगर अम्मीजान चाहे तो हमारा घर लीपा-पोता न जाता ? क्या उसे नये कपड़े नहीं पहनाये जा सकते ? वह दूसरे लड़कों की तरह पटाखे नहीं चला सकता ? इसी उलझन में उसने अब्बा से दूसरा सवाल किया ।

‘मुसलमान होने से ही दीवाली क्यों नहीं मनाई जा सकती अब्बा ? मुहल्ले भर में हमारा घर ही कितना बदसूरत नजर आता है ।’

‘तुमसे कहा तो कि मुसलमान दीवाली नहीं मनाते फिर मगज क्यों खाये जाते हो ?’

अब्बा काम में व्यस्त थे । दूसरे आसपास की खुशहाली में उनके मन को उदासी अज्ञात रूप से ढाँके ले रही थी । लड़के के प्रश्न से उदासी या बेचैनी उभर गयी । उनके उत्तर में झुंझलाहट थी ।

उन्से दुबारा प्रश्न नहीं हुआ । लड़के के मन में जरूर यह सवाल चक्कर लगा रहा था, मुसलमान होने से ही हम दीवाली क्यों नहीं मनाते । पटाखे चलाने का लोभ उसे ललचा रहा था ।

सड़क की चहल-पहल और दियों के उजाले में अपने को पाकर वह इस सवाल को भूल गया । उसे यह याद न रहा कि वह मुसलमान है । दूसरे लड़कों को उछलता-कूदता देखकर वह भी छलांगे भरने लगा । मारे खुशी के किलकारी भरने लगा । नौकर के आदेश रह-रहकर कान में आ रहे थे, बाबू, धीरे चलो । जल्दबाजी न करो । उधर क्या देख रहे हो ? सीधे क्यों नहीं चलते ? और वह लापरवाही से आदेशों की अनजाने उपेक्षा कर रहा था ।

मोड़ से उसने अपने घरपर एक नजर डाली, उस तरफ एक क्षण से ज्यादा न देखा जा सका ।

अब वह बड़ी सड़क पर चल रहा था । एक दूकान पर मिठाई के छोटे-बड़े थाल सजाकर रखे गये थे । बिजली के तेज प्रकाश में मिठाई पर चिपके हुए सोने-चाँदी के वरकों की दमक आँखों को चकाचौंध कर रही थी । थाल पर वरफी का ताजमहल था और पेटे से दिल्ली का बिड़ला मंदिर बना था । मिठाई का घंटाघर और मिठाई का ही हार्डकोर्ट । मिठाई के खरीदारों को भीड़ लगी थी । हलवाई तौलने में मगन था । रहीम की आँखें मिठाई के थाल पर जा रुकीं । आँखों के साथ पैर भी ठिठके । रहीम दूकान के सामने खड़ा था । नौकर ने पूछा—कौन सी मिठाई लोगे ? हलवाई का ध्यान इस ओर न था ।

इतनी मिठाइयों में से किसी एक को कैसे चुना जाय ? जिस पर निगाह पड़ती उसे पाने के लिए जी ललचाता । किसे छोड़े, किसे ले ? मिठाई के जायके के बजाय सोने-चाँदी के वरकों का लालच ज्यादा था । रहीम ने कुछ देर सोच-कर के जैसे बिना निश्चय के गुलाब जामुन की तरफ इशारा किया । हलवाई दूसरे ग्राहक को निपटाकर गुलाब जामुन तोल रहा था कि रहीम की निगाह बंगाली मिठाई चमचम पर पड़ी । चमचम पर चपकी चाँदी की पन्नियाँ उसे ज्यादा भायीं । उसने थाली पर हाथ रखकर कहा, नहीं वह नहीं । हम तो यह लेंगे ।

थाली पर हाथ लगाना था कि हलवाई के हाथ से तराजू छूट गयी । वह चौंककर उछला । नीचे आ, उसने रहीम के कान ऐंठे और बोला, यह तूने क्या कर डाला ? सारी थाली खराब हो गयी ? पास खड़े ग्राहक ने उससे भी अधिक कठोर स्वर में कहा, आजकल मुसलमानों के दिमाग सातवें आसमान पर हैं । छोटे-छोटे लड़कों का भी सिर फिर गया है । हिन्दू की दूकान पर इस तरह बेधड़क मिठाई छू दी । नौकर बीच में पड़ा, उसने हलवाई से कहा, आप यह क्या कर रहे हैं ? आपकी थाली खराब हुई, मिठाई बाँध दीजिए, इतनी छोटी बात पर इतना तैश । इस बच्चे के बाप से आपकी इतनी महोब्रत है,

एक मुहल्ले के रहनेवाले । बच्चे से गलती हुई । मिठाई बाँधकर रखिए, लौटते हुए ले लूँगा ।

उत्तर उचित था, लेकिन हलवाई की बड़बड़ाहट बन्द नहीं हुई । रहीम चुप था । कान ऐंठने से वह थरथर काँप रहा था । मन में विचार आया, सभी लोग हाथ लगा-लगाकर मिठाई की माँग कर रहे हैं, यह दो, वह दो । फिर मैंने हाथ लगा दिया तो कौन बड़ा गुनाह हो गया । मेरे हाथों में जहर नहीं है । हम इसकी पूरी थाली क्यों खरीदें ? उसे मेरे कान ऐंठने का क्या हक था ? उसे याद आया वह मुसलमान है ।

मुसलमानों के छोटे-छोटे लड़के भी... इसमें शराब की क्या बात है ? मसमूच मुसलमान और हिन्दुओं में कहीं बड़ा फरक है । इसलिए तो मुसलमान हिन्दुओं का त्यौहार नहीं मनाते, और हिन्दू उनकी लुई मिठाई नहीं खाते । यह फरक क्या और क्यों है ? हम लोग दीवाली नहीं मनाते, लेकिन मनाने-वालों से नफरत नहीं करते । हिन्दुओं को हमारे हाथ से इतनी नफरत !

“अब हम आगे देखने नहीं चलेंगे, चलो, वापस चलो ।”—रहीम ने नौकर से कहा ।

घर में पहुँचने पर नौकर ने मालकिन को चमचम की टोकरी दी । सारी कहानी सुनायी । मालकिन ने कहा, अच्छा, बच्चे खा लेंगे । पैसे दे आओ । लेकिन एकमुश्त बाईस रुपया बटवे से निकालते हुए रहीम के अच्चा शांत न रह सके । उन्होंने रहीम के दाहिने-बाएँ गालों को अपने थपेड़ों से लाल कर के कहा—नालायक से पहले कह रहा था दीवाली देखने मत जा । दीवाली से मुसलमानों का सरोकार ?

इतनी चोट खाकर रहीम ने अच्छी तरह समझा कि मुसलमानों को हिन्दू त्यौहारों में शरीक नहीं होना चाहिए । मैं कभी दीवाली की रोशनी देखने नहीं जाऊँगा ।

× × ×

घटना को कई वर्ष बीते । रहीम को यह याद नहीं । उसके बाप का तबादिला देहात में हुआ । रहीम को हिन्दुओं की चीजों के छूने में एक खास

प्रकार का आनन्द आता था। कुंए पर हिन्दू स्त्री पानी भर रही है, निगाह बचाकर पास जाता और मिट्टी का घड़ा छूता, औरत बड़बड़ाकर घर लौट जाती। हंडी जमीन पर डाल दी गयी। कोई लड़की अपने बाप के लिए रोटी ले जा रही है, उसकी रोटी छू ली। दिन में एक घटना ऐसी न हो तो उसकी रोटी न पचती, रात को नींद न आती। पुलिस के थानेदार के लड़के से कोई कहने की हिम्मत कैसे करे ?

लोग बड़बड़ाते, गाली देते, इससे रहीम को और भी मजा आता। वह रोजमर्रा ऐसी नई-नई शरारतें खोज निकालता। उसका भाव दिन पर दिन दृढ़ होता रहा...



भात-युद्ध

सन् १९४६, सोलह अगस्त का दिन ।

पटना नगर के राज-पथ पर सन्नाटा छाया था । चारों ओर उदासी और विषाद फैला हुआ था । वातावरण काफी गम्भीर था । इक्के-दुक्के मनुष्य सहमे और चौकन्ने-से सड़क पर चल रहे थे । उनकी आकृति पर प्रश्नवाचक चिन्ह स्पष्ट रूप में अंकित था ।

प्रातःकाल नौ बजते-बजते वातावरण की यह गम्भीरता 'पाकिस्तान जिन्दाबाद' और 'अल्लाहो अकबर' के नारों से भंग हो गयी । अस्पष्ट और क्षीण घोष, कुछ ही क्षणों में स्पष्ट और प्रबल सुनायी देता और फिर कुछ ही मिनटों में क्रमशः क्षीण होता हुआ विलीन हो जाता । साथ ही नभ-मण्डल का वह कम्पन भी शान्त हो जाता जो इन घोषों के कारण उत्पन्न होता था और फिर पहले से भी अधिक, असह्य जड़ता वातावरण को स्तब्ध बना देती ।

कुछ-कुछ अन्तर से एक के बाद एक, अनेक टोलियाँ चली गयीं । उनका आदि-अन्त नहीं था । इन टोलियों में कालेज-हाई स्कूलों के तरुण, शिक्षा-प्राप्त युवक थे, प्रोफेसर-अध्यापक थे, प्रारम्भिक स्कूलों के पढ़नेवाले आठ-आठ, नौ-नौ साल के नन्हें-नन्हें बालक भी थे । इक्के-टांगे हाँकनेवाले थे, साग बेचनेवाले, कुंजड़े और गरीब कुली थे । क्लर्क-आफिसर थे, दुकानदार और धनिक थे । किसी के तन पर फटे-पुराने चिथड़े थे और कोई कोट-पतलून में हिन्दुस्तानी साहब बना था । कोई हड्डियों का ढाँचा भर था और किसी के हृष्ट-पुष्ट शरीर पर इतना मांस था कि उससे दो मन के पुतले तैयार किये जा सकते थे । किन्तु इन विषमताओं से, उन अन्तस्तल में, उनकी अन्तः-स्फूर्ति में कोई भेद नहीं था । विविध वय, स्थिति और वर्ग के अनगिनत लोग, एक ही विचार, एक ही आकांक्षा और संकल्प से प्रेरित होकर चले जा रहे थे । जैसे सबकी मंजिल एक हो, सबका साधन और साध्य एक हो ।

और उनके घोषणों से उनका दृढ़ संकल्प प्रतिध्वनित हो रहा था । इन नारों को सुनते-सुनते सतीश की चिन्तन-शक्ति कुण्ठित हो गयी । वहमूक

अन्तस्तल और आतंकित मन से इन टोलियों को पार करके कालेज पहुँचा । यहाँ भी मैदान में एकत्रित मुस्लिम विद्यार्थियों का कोलाहल सुनायी दिया । सतीश के साथ ही कालेज के प्रिन्सिपल ने आँगन में पाँव रखा । प्रिंसिपल को देखकर विद्यार्थी जोर से चिल्लाये—पाकिस्तान जिन्दाबाद !

“हिन्दुस्तान जिन्दाबाद !”

नारे सुनकर सतीश का मस्तिष्क स्तब्ध-सा हो गया था । उसने अनुभव किया, ‘हिन्दुस्तान जिन्दाबाद’ का नारा सहसा उसी के मुँह से निकल गया है । ध्वनि की शक्ति से वह चौंक पड़ा ।

यह उसका भ्रम था । ध्वनि उसके हृदय में गूँजकर रह गयी । कंठ ने स्वर प्रदान नहीं किया और ध्वनि के इस अन्तः-विस्फोट के कारण ध्वनि में व्यक्त होने की अपेक्षा अधिक सामर्थ्य आ गई थी । इस सामर्थ्य से उसकी मानसिक जड़ता छिन्न हो गयी । चेतना तीव्रता से काम करने लगी । इस तीव्रता के कारण वह अपने विचारों में कोई क्रम नहीं स्थापित कर सका ।

पाकिस्तान के विरोध में मेरे मुँह से सहसा ‘हिन्दुस्तान जिन्दाबाद’ का नारा क्यों निकल गया है ? पाकिस्तान, हिन्दुस्तान ! क्या पाकिस्तान ? वह सद्यः प्रसूत है या उसका कोई इतिहास है ? वह भूत, वर्तमान और भविष्य में से किस काल की वस्तु है ? वह पहिले नहीं था, अब नहीं है, सम्भवतः भविष्य में न हो ? यदि उसका अस्तित्व भविष्य के गर्भ में है तो वह आवाद कैसे हुआ, जो उसके जिन्दा होने की घोषणा की जा रही है ? क्या हिन्दुस्तान के रहने से पाकिस्तान समाप्त हो जायगा ? या यह कि पाकिस्तान के जीवित हो जाने पर हिन्दुस्तान अपना अस्तित्व खो बैठेगा, जो मेरे हृदय में उसका अस्तित्व अपने को व्यक्त करने के लिए इस तरह व्याकुल हो उठा ? यदि दोनों ‘स्तान’ हैं या होंगे तो इन दोनों में इतना विरोध क्यों है ? विरोध नहीं है तो एक दूसरे को परस्पर अनुमोदन भी प्राप्त नहीं है ।

एक-एक करके फिर ये ही प्रश्न । हिन्दुस्तान और पाकिस्तान दोनों स्तानों का औचित्य और अनौचित्य हिन्दुस्तान जिन्दाबाद और पाकिस्तान जिन्दाबाद...

इसी समय उसको दृष्टि अपने सहपाठी मुनव्वर पर गयी जो मुस्लिम

विद्यार्थियों को कालेज में जाने से रोक रहा था ! मुनव्वर की गिनती सुशील और सभ्य विद्यार्थियों में होती थी । वह सतीश के साथ चतुर्थ वर्ष में दर्शन-शास्त्र पढ़ता था !

“भैया मुनव्वर, यह सब क्या हो रहा है ? यदि इस्लाम या उसके सिद्धान्तों का जय-घोष किया जाय तो उसका कोई अर्थ भी लगाया जा सकता है, किन्तु एक स्वप्न और वह भी काल्पनिक स्वप्न के लिए ये सारे प्रयत्न क्यों ?”

सतीश ने मुनव्वर के पास जाकर प्रश्न किया ।

“सतीश, तुम लोग अन्तरराष्ट्रीय राजनीति में होनेवाले प्रति क्षण के परिवर्तन से परिचित रहोगे, लेकिन यह सोचने की तकलीफ गवारा नहीं करोगे कि पड़ोस में रहनेवाला मुसलमान क्या सोचता है ? आप लोग पाकिस्तान को स्वप्न कहें या और किसी नाम से याद करें, किन्तु यह सत्य है कि आज भारत के प्रत्येक कोने में बसा हुआ मुसलमान अपने को एक दूसरे का अंग अनुभव करता है । इस माँग ने सबको संगठित कर दिया है । प्रत्येक मुसलमान समान भावों से स्पन्दित और एक प्रकार-सी आकांक्षा रखता है । इसमें धार्मिक कारण कम और दूसरे कारण ही ज्यादा हैं । राष्ट्र उस जन-समूह का नाम ही तो है, जिनके सुख-दुःख और उद्देश्य-आकांक्षा सामान हैं । हमारी इस राष्ट्रीयता का प्रतीक, पाकिस्तान, जितना यथार्थ है, उतना वास्तविक तो हिन्दुस्तान भी नहीं है । पाकिस्तान के नारे में इस्लाम का नारा भी शामिल है । पाकिस्तान नहीं तो इस्लाम भी नहीं, इस्लाम के लिए पाकिस्तान की जरूरत है !”

नारे लगाते हुए मुस्लिम विद्यार्थी चले गये ।

कक्षा में अध्यापक दर्शन-शास्त्र के गहन सिद्धान्त की व्याख्या कर रहे थे, किन्तु सतीश का मन उस ओर नहीं था !

× × ×

सतीश के पिता जन्म से कायस्थ, किन्तु स्वभाव से ब्राम्हण थे । वे एक हाई स्कूल में प्रधानाध्यापक थे । भारतीय संस्कृति और परम्परा के अनुरागी । युवावस्था में ही वैष्णव सम्प्रदाय की दीक्षा लेकर गले में तुलसी-माला और कंठी धारण की । तब से, वैष्णव-सन्त की तरह अहिंसा और अक्रोध

का पालन करते आये हैं। राजनीति तथा सांसारिक परिस्थितियों से निरपेक्ष रहने के कारण वे महात्मा गांधी की प्रवृत्तियों से अधिक परिचित नहीं थे, किन्तु गान्धीजी के अहिंसा-सम्बन्धी प्रयोगों से उनकी आस्था वैष्णव आचार-विचार में अधिक दृढ़ हो गयी थी ! सतीश को अहिंसा, भक्ति और वैष्णवी श्रद्धा पैतृक सम्पत्ति के रूप में मिली थी। उसकी स्वाभाविक गम्भीरता दर्शन-शास्त्र के अध्ययन और मनन के कारण अपनी चरम सीमा को पहुँच गयी थी। अन्य युवकों से उसे अनायास ही पृथक् किया जा सकता था।

१६ अगस्त की घटना के पश्चात् वह स्वयं अपने में परिवर्तन अनुभव करने लगा। उसका मन सदा धुब्ध और चिन्तित रहता। दिन-दिन भर सोच-विचार में निकल जाता, लेकिन समस्या का हल नहीं सूझ रहा था। एक दिन उसने दर्शन के अध्यापक से पूछा—

“यदि एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र पर आक्रमण करे या उसे युद्ध के लिए ललकारे तो क्या दूसरा राष्ट्र चुपचाप बैठा रहे ? सशस्त्र और उद्दण्ड राष्ट्र के विरुद्ध किसी राष्ट्र का अहिंसक तथा नम्र बना रहना उचित है ?”

“नहीं। अहिंसा व्यक्ति का धर्म है, समूह का नहीं। राष्ट्र का अधिकांश भाग अहिंसा का आचरण नहीं कर सकता। अहिंसा व्यक्ति को ऊँचा उठाती है, अहिंसक व्यक्ति पूज्य और श्रद्धेय बन सकता है, किन्तु राष्ट्र या समूह को वह उतना ही गिरा भी सकती है। अशोक के समय में इसका प्रयोग हो चुका है। जिसका परिणाम निकला—मौर्य साम्राज्य का पतन। अब तक का संसार का इतिहास बतलाता है, हिंसा से व्यक्ति गिरता है, किन्तु राष्ट्रों ने उन्नति ही की है। महात्मा गांधी ने इस इतिहास में नया सर्ग जोड़ा है, जब कि किसी देश ने अपनी मुक्ति के लिए अहिंसा का प्रयोग राजनीतिक साधन के रूप में किया है। गांधीजी का प्रयोग बहुत कुछ सफल हुआ है, किन्तु जब भारत पूर्ण स्वतन्त्र हो जायगा, उस समय वह अपनी आन्तरिक सुव्यवस्था और बाह्य सुरक्षा तथा पर-राष्ट्रीय सम्बन्धों में भी अहिंसा का प्रयोग करेगा, इसकी सम्भावना नहीं दिखायी देती। यदि उस समय तक गांधीजी जीवित रहें और भारतीय नवजात स्वतन्त्रता को इस अग्नि-परीक्षा में डालने का साहस करेंगे

तो उस परीक्षण से मानव-जाति की बहुत बड़ी समस्या को हल करने में एक नया दृष्टि-कोण संसार के आगे आयेगा । किन्तु लक्षण ऐसे नहीं दिखायी देते । जिस देश ने बीस वर्ष तक अहिंसा का प्रयोग किया है, अहिंसा के लिए अनेक बलिदान हुए, वही देश कितना हिंसक बन गया । और यह सब कुछ हुआ है, गांधीजी की उपस्थिति में । हमारा वर्तमान राजनीतिक आन्दोलन अहिंसा का अच्छा उदाहरण है । हमारी राजनीतिक चेतना जिस समय कुछ व्यक्तियों तक सीमित रही, गांधीजी की अहिंसा सफल दिखायी दी, किन्तु ज्यों-ज्यों वह साधारण जनता के प्रयत्नों का बल प्राप्त करती जा रही है, अहिंसा असफल और अव्यावहारिक होती जाती है । सन् १९२१, १९४२ और १९४६ पर विचार करने पर बात बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है ।”

सतीश की गम्भीरता और बढ़ गयी ।

ज्योंही सतीश प्रातःकाल उठा, उसे घर में रोने-पीटने की आवाज़ सुनायी दी । घर की बूढ़ी नौकरानी दहाड़ मार-मारकर रो रही थी । बूढ़ा नौकर ज़मीन पर बेहोश पड़ा था । और उसकी पुत्रवधू निर्दयता से छाती पीट-पीटकर जमीन-आसमान एक किये दे रही थी । उनकी आँखों से आँसुओं का ताँता लगा हुआ था ।

पिताजी ने हँधे कण्ठ से कहा—“बेटा सतीश, अपना मोहन कलकत्ते के दंगे में मारा गया ।”

मोहन नाम के साथ सतीश की कितनी स्मृतियाँ जुड़ी हुई थीं । मोहन महरी का लड़का होते हुए भी उसका वचपन का साथी था, ऐसा साथी जिसके साथ रहकर उसने कभी भाई की कमी अनुभव नहीं की । साथ खेले-कूदे, खा-पीकर बड़े हुए ।

घण्टों रोने के बाद जब सतीश ने अपना मुँह धोया तब उसे लगा, मोहन उसके सामने खड़ा-खड़ा हँस रहा है । उसका वही पहिले-जैसा अक्खड़पन । चेहरे पर वही निश्चिन्ता और मस्ती ।

तीन महीने पहले ही वह गौना करके अपनी स्त्री को लाया था । पति-पत्नी को साथ रहते महीना भी नहीं बीता था, पत्नी के हाथ की अभी मेंहदी

भी नहीं पुछी थी कि मोहन को अपनी नौकरी पर कलकत्ता जाना पड़ा । जिस दिन वह कलकत्ता गया, उसकी बहू कितनी विवशता से उसकी तरफ टुकुर-टुकुर निहार रही थी । उस समय इस दृश्य से सतीश का हृदय भी विचलित हो गया था ।

मोहन की चौड़ी छाती, उसकी लम्बी-लम्बी भुजाएँ, हृष्ट-पुष्ट शरीर, ये सब क्या यों ही रौंद देने के लिए थे ? उस युवक पर देश गर्व कर सकता है । उसकी जवानी देश की सेना की शोभा बढ़ाती ।

फिर उसकी दृष्टि उस सोलह वर्ष की अवोध बालिका पर पड़ी, जो यथार्थ में उसकी भाभी थी, जिसने अभी अलसाई आँखों से संमार की तरफ ताका हो था कि उसका सुहाग, उसका सारा सुख उन लोगों के द्वारा लूट लिया गया, जिनका उसने स्वप्न में भी कुछ नहीं बिगाड़ा था । उसका हिन्दुस्तान से क्या सम्बन्ध था ? और पाकिस्तान से क्या दुश्मनी की थी उसने ?

सतीश जब-जब घर आता उसकी दृष्टि मोहन की विधवा पत्नी पर पड़ती । उसके अस्त-व्यस्त केश, विषण्ण नेत्र, उदास आकृति को देखकर उसका हृदय स्तब्ध रह जाता । जो कुछ ही दिन पहले इतनी चंचल दिखायी देती थी, जैसे उसके शरीर में रक्त के स्थान पर पारा भरा हो, लेकिन अब चंचलता का नाम भी न था । चेहरे पर विषाद की छाया अधिकाधिक गहरी होती जाती थी । सतीश चाहता वह उसकी नजर न आये, इसी से वह भरसक घर से बाहर ही रहता ।

एक दिन उसने पत्रों में देश के एक नेता का वक्तव्य पढ़ा—वहाँ (नोआ-खाली में) स्त्रियों को भूमिशायी करके दुष्टों ने अपने पाँव के अँगूठे से उनके मस्तक का सौभाग्य-सिन्दूर पोंछ डाला, मंगलसूत्र तोड़ दिये, हाथ की चूड़ियाँ फोड़ डालीं और फिर... पढ़-पढ़कर मानवता काँप रही थी और युवकों का हृदय खौल रहा था ।

×

×

×

“हर हर महादेव !” एक बार और जोर से—“हर हर महादेव !!”

इस घोष में कितनी शक्ति थी, कितनी चेतना थी और साथ ही कितना भय और आतंक था !

युवकों की टोली इस घोष में अपने आपको भुलाकर बढ़ी जा रही थी डाक्टर हाशिम के घर की ओर, और उस टोली का नेतृत्व कर रहा था सतीश ।

किन्तु यह क्या ? डाक्टर साहब के मकान में किसी प्रकार का कोलाहल नहीं है । भय का कोई चिन्ह नहीं । वे लक्षण नहीं थे जो मृत्यु को निकट आया जानकर मानव के निवास-स्थान पर अपने आप अंकित हो जाते हैं और जिन चिन्हों को युवकों की वह टोली कई जगह देख चुकी थी । युवकों ने सोचा घर में कोई नहीं है । टोली लौटना ही चाहती थी कि भीतर से मधुर, कोमल और संयत स्वर सुनाई दिया—

“आप लोग लौट क्यों रहे हैं, आइए, हम स्वागत करते हैं ।”

सतीश ने देखा, डाक्टर साहब की पत्नी उसकी ओर एक टक देखती हुई आभंग दे रही है । इस महिला में ऐसी निर्भयता थी, उसके नेत्रों में ऐसी आत्मीयता थी कि सतीश ने अनुभव किया, उसके रूप में उसकी सहोदरा वहिन खड़ी है ! उसके हाथ का शस्त्र रुक गया । डाक्टर ने कहा—

“आप लोग बाहर ही क्यों रुक गये ? आइए ! आप लोगों का यह प्रयास इस बात का समर्थन करता है कि भारत एक राष्ट्र नहीं है । एक जाति या देश का बदला देश और जाति के रूप में उसी समय चुकाया जाता है, जब दोनों भिन्न हों और दोनों में काफी दुश्मनी हो । उस समय विरोधी के किसी अंश को कहीं भी हानि पहुँचाकर सन्तोष किया जा सकता है । किन्तु भारत की हजारों वर्ष की परम्परा इन दोनों जातियों को एक ही दिशा में अग्रसर करती रही है । यदि दुर्भाग्यवश दोनों जातियाँ, दो समानान्तर रेखाओं पर चल ही दी हैं तो किसी समझदार आदमी के लिए उतावलेपन से, बिना सोचे-विचारे यह निर्णय कर लेना उचित नहीं कि ये दोनों कभी एक मार्ग पर नहीं चलेंगी । इस विचार से आप लोगों के एक राष्ट्र के सिद्धान्त को बल नहीं मिलता, बल्कि उन लोगों का समर्थन होता है, जो भारत में राष्ट्र बनाना चाहते हैं ।”—डाक्टर के नेत्रों में एक चमक आ गयी थी । उन्होंने कुछ रुककर कहा—“जहाँ तक मेरे परि-

वार के प्राणियों का प्रश्न है, हम प्रस्तुत हैं। गांधीजी से हम लोगों ने भी काफी सीखा है। उन्होंने देश को मारना नहीं मरना सिखाया है। और हमने भी उनका यह पाठ अच्छी तरह सीखा है।”

सब तरुण चुपचाप खड़े थे।

“और आप लोग यह भूलते हैं,” डाक्टर की पत्नी ने कुछ आगे आकर सरल ढंग से कहा—“आज मुस्लिम औरतें हिन्दू स्त्रियों की विपत्ति से खुश नहीं हैं। इस्लाम की अपेक्षा स्त्रीत्व का नाता ज्यादा महत्त्वपूर्ण है, जो हिन्दू और मुसलमान औरतों को एक ही सतह पर खड़ा करता है, उनके अपहरण और अपमान की कथा से हर औरत दुखी होती और वे अपने मर्दों की जघन्यता से शर्मिन्दा हैं। यदि हम लोगों को मौका मिले तो हम उन बहनों की सेवा में अपना पूरा जीवन बिता दें। लेकिन पतितों को उठाने की अपेक्षा यह ठीक रास्ता नहीं है कि हम उनके बदले कुछ और औरतों का धर्म भ्रष्ट करके अपना गुस्सा बुझाएँ।”

×

×

×

प्रातःकाल का समय था। बंग-भूमि का हरा-भरा आँचल। दूर-दूर तक खेत फैले हुए थे। पूर्व दिशा में नारियल के वृक्षों की कतार के पीछे सूर्य का अर्ध-विम्ब प्रदीप्त हो रहा था। निकट के तालाब की लहरों पर अरुण-आभा किलोलें कर रही थी।

एक सकड़ी-सी पगडंडी पर तीन पथिक चल रहे थे। उनकी आकृति वालसूर्य की कोमल आभा से चमक रही थी। आगे-आगे डाक्टर हाशिम थे, बीच में उनकी पत्नी और अन्त में सतीश !

उनकी चाल इस बात को प्रकट कर रही थी कि उनके पग दृढ़ संकल्प के साथ मानवता की सेवा के लिए आगे बढ़ रहे हैं।

दो कैदी

“मोहन, तुम अब तक उदास हो ? छः महीने की सजा में ही बच्चू घुले जा रहे हो । लोग घर छोड़ कर बरसों परदेश कमाते हैं, मान लो छः महीने सैर करने आ गये थे । घर में औरत नहीं, उस पर इतनी बेचैनी !”

“दादा, आदमी औरत के लिए घर की चिन्ता नहीं करता । छोटे बच्चे को जवान आदमी से ज्यादा घर की याद सताती है । एक प्राणी ही घर नहीं होता, बहुत कुछ मिलकर घर बनता है । रही मान लेने की बात, सोचता हूँ, छः महीने यहीं काटने हैं, लेकिन दूसरे क्षण मन में न जाने कहाँ से उदासी और सोच-विचार भर जाता है । हवा के झोंके रुक-रुककर आते हैं, मन में रुक-रुककर अन्धड़ चलता है । अगर सजा मुनाते वक्त मजिस्ट्रेट दिमाग में ऐसी सुई लगा दे कि जितने दिन जेल में रहना है, उतने दिन दिमाग कुछ न सोचे तो बड़ा अच्छा हो । घड़ी में चाबी लगायी जाती है, उसी तरह की कोई चाबी हमारे दिमाग में भर दी जाय की जिस दिन सजा खतम हो उसी दिन हमारे दिमाग जागें । ऐसा मालूम हो, रात कहीं सो गये थे, दिन निकलने पर घर जा रहे हैं । जागते हुए सोना मुश्किल है ।”

“तुम यहाँ का रस क्या जानो ? हमारे साथ उठो-बैठो, गाओ-बजाओ, तुम्हें जेल की जिन्दगी का रस मिलेगा । मेरी आधी उम्र जेल में गुज़र गयी । दाढ़ी-मूँछ नहीं फूटी थी । तुम से दो तील साल छोटा हूँगा । विवाह हुआ था, नया खून जोश खा गया । एक खून करके बीस साल के लिए यहाँ आया । साल भर तक मन नहीं लगा, दिन-रात लगता था जैसे कोई बुला रहा है । कुछ दिनों में सिर के बाल पक गये, दाढ़ी-मूँछ बढ़ी, साल भर में तीस-पैंतीस का दिखायी पड़ा । माँ और महरी मिलने आयी, मैं सामने खड़ा था, मुझे पहचान न सकीं ।”

“इस हालत में तुम अब तक जिन्दा कैसे रहे, दादा ?”

“पागल, क्या कोई जिन्दा रहने की चाह से जीता है या मरने की इच्छा से मर जाता है ? जीते इसलिए हैं कि जीना है, मरते इसलिए हैं कि मर जाना है । मन-समझौती है, मन ने माना यह औरत है, यह दोस्त है; और चलने

लगी हमारी दुनिया । यहाँ भी साथी कैदियों से नेह होता है, तरह-तरह के नाते निकलते हैं, मन रम जाता है इस नई दुनिया में । हम लम्बी सजा के कैदी चार-छः साल फाटक से बाहर कदम नहीं रख पाते, अन्दर काम करते हैं, दारोगाजी की खुशामद कर-कर के आधी सजा खत्म करते हैं, तब कहीं वार्डर बनाये जाते हैं और मामूली कैदियों पर हुकूमत करने का हक मिलता है । बाहर आयें तो राहगीरों से माँग-माँग कर चिलम-तमाखू की तलब मिटे, नये-नये लोगों को देखें । साल-छः महीने की सजा भी कोई सजा है, देखते-देखते कट जाती है । फिर तेरे बड़े भाग हैं, इतनी जल्दी बाहर का काम मिला । भीतर किसी दूसरे वार्डर के नीचे काम करता तो नानी याद आ जाती ।”

“तुम्हारे लिए साल-छः महीने काट देना हँसी-खेल है दादा । यहाँ अट्ठाइस दिन ऐसे गुजरे जैसे अट्ठाइस बरस ! चार-दीवारी में रहते तंग आ गये । कल पहिली बार तुम्हारे साथ निकला तो दूर का आदमी दिखाई नहीं दिया, जैसे आँखों की रोशनी भी बँध गई हो । यह धारीदार कपड़ा, रोज़-रोज़ एक तरह का पहनावा और वह भी बेमाप का, जैसे चाँद-ग्रहण में माँग कर लाये हों । पाजामे का एक पाँव घुटनों तक तो दूसरा पिंडलियों तक । सिर बड़ा, टोपी छोटी । बन्दर नचानेवाला आदमी आता है न ? जब बन्दर अपनी रूठी बन्दरी को मनाने सुसराल जाता है, मदारी उसे सजाने के लिए जैसी ओछी टोपी उढ़ाता है, यह टोपी भी वैसी ही लगती है । इन वाहियात कपड़ों को जबरदस्ती पहनना पड़ता है, नहीं लँगोट लगाना अच्छा । इन कपड़ों में हम बन-मानुस बन जाते हैं, रास्ता चलने वाले इस निगाह से देखते हैं, जैसे हम सीधे किष्किन्धा से आ रहे हैं । लोगों की नज़रों में आने के बजाय भीतर काम मिले तो अच्छा । सड़क पर चलते, लगता है, ज़मीन में गड़ जाऊँगा !”

“तुम निरे दुध-मुँहे बच्चे मालूम पड़ते हो, मोहन ! अपनी किस्मत सराहो जो मुझ जैसा वार्डर तुम्हें मिला । कोई दूसरा होता तो तुम्हें तंग कर देता । यहाँ वही आदमी मज़े में रहेगा जो सब की छाती पर मूँग दले । तुम नये-नये हो । रास्ता चलनेवालों को अपनी दुनिया का आदमी मत मानो, उनसे लजाओ नहीं ।”

आठ-दस कैदियों की टोली जेल से कुछ दूर सड़क पार कर जेल के असिस्टेंट-सुपरिण्टेण्डेंट के बँगले पर पहुँची। कैदियों के दोनों पाँवों में लोहे के कड़े थे। साथ में लोहे की छोटी-छोटी जंजीरें और ताले-कुंजी जैसी पीतल की दो चार चीजें पड़ी थीं। इनसे चलते समय छम्-छमाम्-छम् की ध्वनि, अजीब बेसुर-ताल के निकलती थी। इस आवाज की तरफ खास कर बच्चों का ध्यान जाना जरूरी था। कैदी अपने चारों ओर के वातावरण से अनजान जा रहे थे। दो-दो, तीन-तीन की टोली बन गई थी। वार्डर और मोहन अपनी राम-कहानी में ऐसे तल्लीन थे कि उनकी बातों का सिलसिला बँगले के अहाते में पहुँचने पर टूटा। वार्डर के चेहरे पर दयालुता थी और मोहन की आकृति पर भोलापन !

कैदियों के पीछे एक सिपाही लापरवाही से आ रहा था, जैसे कैदियों की तरफ से कोई चिन्ता नहीं। दस आदमियों को एक आदमी ले जा रहा है, इस दृश्य को देख कर उस ग्वाले की याद आती है जो अकेला सौ-पचास गाय-भैंसों को हाँक कर चराने ले जाता है। गाय-भैंस के गले में घण्टी बाँध ग्वाला एक स्थान पर बैठा उनकी गति-विधि का ज्ञान रखता है, कैदी के पाँवों में डाली गयी बेड़ी उन घंटियों की तरह है।

सिपाही दरवाजे पर रहा। एक कैदी ने झाड़ू-टोकरा नीचे रख कर कहा—
“चलो पहिले “आठ”-कण्टिये”* की दो-चार वाजियाँ हो जायँ, फिर कुछ काम किया जायेगा।”

“इस जगह आते ही मन चाहता है, दिल खोल कर कबड्डी खेलें। नया सिपाही भी एक ही डरपोक है, बात-बात में कहता है, साहब देख लेगा, साहब आ जायेगा। आ जायेगा तो आ जाने दो, यहाँ परवाह किसे है ! काम ही करना था तो अपना घर का करते, काम के लिए जेल क्यों आते ? जो होगा देख लेंगे। मोहन, कहीं से कोयला तो ला।”

कोयला आया। दो-दो की जोड़ी बनी। बँगले के सामने के पार्क में मियाँ

*एक प्रकार का खेल जिसमें दो साथी खेलते हैं और आठ-आठ कंकरियाँ रखी जाती हैं।

जी ने नमाज पढ़ने के लिए एक चबूतरा बनवाया था, वहीं इन मस्तानों की महफ़िल जमी । मोहन खेल में शामिल नहीं हुआ । एक आदमी साथी न पाकर खाली बैठा रहा । आग्रह करने पर मोहन बोला—

“मेरा मन खेल-कूद में नहीं लगता भैया ! मेरा कहा मानो, तुम लोग भी पहले काम कर लो, उसके बाद फ़ुर्सत से खेलने बैठो । काम करने आये हैं, इस तरह बैठना ठीक नहीं ।”

“कल का लड़का हम पर ही हुकूमत चलाने लगा । यहाँ काम करने लगे तो दम लेने की फ़ुर्सत न मिले और न करो तो कोई पूछनेवाला नहीं । थोड़ा-बहुत काम करके दिन बिताना है, अगर तुम्हारी तरह मेहनत करने लगे तो रह लिये जेल में ।”

वार्डर ने भी उस कैदी के स्वर में स्वर मिलाया—

“मोहन, यह ठीक कहता है । ज्यादा और अच्छा काम करोगे, कोई चैन से न बैठने देगा । मीठा गन्ना जड़ से उखाड़ा जाता है ।”

“तब तुम लोग खेलो, मना नहीं करता । मैं काम करता हूँ । जितना होगा करूँगा, बच जाय तो तुम लोग हाथ बँटा लेना ।”

मोहन घर झाड़ने चला गया ।

“तुम निरे काठ के उल्लू हो । जाओ बैल की तरह जुतो काम में । तुम्हारे भाग्य में यही लिखा है, कोई क्या करे ?” वार्डर ने कहा, किन्तु मोहन ने जैसे सुना नहीं ।

×

×

×

सहायक सुपरिण्टेण्डेण्ट अब्दुल करीम तीन-चार वर्ष पहिले ज़िला जेल का सहायक दारोगा था । कांग्रेस के असहयोग आन्दोलन में उसने सत्याग्रही कैदियों पर ऐसी सख्ती की कि अँग्रेज़ अफसर अपने मातहत की प्रशंसा करते नहीं थकता था । अब्दुल करीम को तरक्की मिली, प्रान्त की बड़ी जेल में सहायक सुपरिण्टेण्डेण्ट बनाया गया । यूरोपियन सुपरिण्टेण्डेण्ट नाम का था । वह अब्दुल करीम को कार्य सौंप कर निश्चिन्त था । अब्दुल करीम ने कैदियों से खूब काम लिया । उसको और दूसरे जेल-अधिकारियों को वेतन से दुगुनी-

तिगनी आमदनी होने लगी। सरकारी खजाने में जेल के मद में पहिली बार रुपया जमा हुआ। राजनीतिक बन्दियों पर तरह-तरह की सख्ती होने लगी, बहुत से बन्दी क्षमा-पत्र भर कर चले गये। ब्रिटिश सरकार इतन बड़े राज-भक्त का सम्मान न करती तो सम्भवतः उनके शासन के इतिहास में कुतघ्नता का एक बड़ा उदाहरण शेष रह जाता। इसी हेतु पिछले माल सम्राट् के जन्म-दिवस पर उसे 'खान बहादुर' की उपाधि मिली। खान बहादुर का सिद्धान्त था, मामूली बातचीत में भी कैदी की माँ-बहनों से नाता न जोड़ा जाय तो हम अपने पद तथा सभ्यता की रक्षा नहीं कर सकते।

जेल के कैदियों के साथ वर्ताव में कहीं स्नेह या नम्रता का लेश न आये, उसके लिए उसे आरम्भ में बाहर तथा घर भी कठोरता का जीवन बिताना पड़ा था। अब वे इसके इतने अभ्यस्त हो गये कि उनकी भाषा का शब्द-कोश निश्चित हो चुका था, उस कोश में नया शब्द मुश्किल से प्रवेश करता। जेल के ओहदेदारों को बाहर से सम्बन्ध जोड़ने का समय नहीं मिलता, पत्नी और बच्चों के साथ वे लोग कम रहते हैं, इसलिए स्वभाव में खिजलाहट आ जाती है, कैदी बिना आपत्ति के उनके शब्द को देव-वाणी समझकर पालन करते हैं इसलिए परिवार या मित्र-मण्डली से भी वैसी ही आज्ञा-परायणता की आशा रखते हैं।

खान बहादुर की पत्नी अपने पति के गुणों से अप्रभावित होकर पतिव्रता धर्म से कैसे वंचित रह सकती थी? पति से उसे दुत्कार-फटकार मिलती है, तो वह अपने बच्चों और नौकरों से प्यार क्यों करे? दिन में दस-पाँच बार घर का वातावरण गरम न होना अस्वाभाविक था। बड़े लड़के की शादी हो चुकी थी। उससे छोटी लड़की सलीमा १५ या १८ वर्ष की थी, लेकिन योग्य वर की खोज में अभी उसकी शादी नहीं हुई थी। तीन साल पहिले तक सलीमा स्कूल जाती थी। किन्तु खान बहादुर जवान लड़की का स्कूल जाना ठीक नहीं समझते, इसलिए अब वह घर पर ही रहती है। स्कूल के दिनों में सलीमा ने अपनी सहेलियों को हँसते-गाते देखा था। तरह-तरह की कहानियाँ पढ़ी थीं। उस समय उसे अनुभव हुआ कि किस तरह हमारे घर में ज़िन्दगी का गला घोट

दिया गया है। जहाँ जीवन अपनी सरल गति पर न चल कर शासन और शक्ति के इशारों पर चलने के लिए विवश किया जाता है। घर में पर्दे का कड़ाई से पालन होता था। स्कूल छूटने के बाद जब इस कड़ाई के वातावरण में सलीमा ने अपन आप को देखा तो वह लम्बी साँस लेकर रह गई। घर में दो-तीन उर्दू मासिक और साप्ताहिक आते थे। कहानियों की नायिकाओं से अपनी तुलना करती तो उसे अपनी क्षुद्रता की अनुभूति होती। बँगले के बाहर उसके लिए कल्पना का लोक था। आकाश में उड़ने वाली चिड़ियों को देख वह सोचती, काश वह लड़की न होकर चिड़िया बनती, जिसे उड़ान भरने की पूरी आजादी है। इस आयु में जब यौवन रोम-रोम में चपलता का संचार कर रहा था, घर वाले उसे बिना आयु के गंभीर तथा चेतना-हीन बनाने के लिए तरह-तरह के बन्धन लाद रहे थे। एक ओर अंकुर पृथ्वी से ऊपर उभरने के लिए अभी शक्ति लगा रहा था, दूसरी तरफ किसी मूर्ख मनुष्य ने उस पर मन भर का पत्थर रख दिया, जिस से वह पृथ्वी के गर्भ में ही सड़ जाय। मुक्त वायु में श्वास न ले। परस्पर विरोधी इन दो प्रवृत्तियों के बीच सलीमा समझ नहीं पा रही थी अपने मार्ग को। उसका स्वभाव विचित्र बनता गया। पैतृक सम्पत्ति और कुल-परम्परा में दूसरे पर शासन करने, बात-बात पर झुँझलाने, हर किसी पर अधिकार जताने की प्रबल आकांक्षा मिली थी और इस संकुचित क्षेत्र में रहने के कारण उसमें हृद दर्जों की निराशा, जीवन के प्रति निरुत्साह और अपनी अकिंचनता की अनुभूति दिन पर दिन बढ़ती गई।

घर में पर पुरुष नहीं आता था, पर कैदियों के लिए प्रतिबन्ध नहीं था। जेल अधिकारियों की दृष्टि में जेल के कपड़े पहनते ही मनुष्य में मानवीय भावों का सर्वथा अभाव हो जाता है। कैदी में न हृदय होता है और न मस्तिष्क ! वे होते हैं ओहदेदारों के इशारे पर नाचने वाले काठ के पुतले, जड़, अचेतन ! उनसे पर्दों की क्या आवश्यकता ? कैदी घर झाड़ते, कपड़े धोते, बर्तन माँजते, बाहर की हरियाली सींचते, घास छीलते।

घर की सफाई सलीमा की निगरानी में होती। मोहन पहली बार जब कल भीतर गया तो सलीमा ने देखा, यह-अनोखा कैदी है ! बात-बात में हाथ

नहीं जोड़ता। बात करने में रस नहीं लेता। काम की धुन, नीची गर्दन किये काम में लगा रहता है। इस आचरण में उसे कहीं अपनी उपेक्षा दिखाई दी।

आज मोहन जब अन्दर गया तो सलीमा स्नान करके आ रही थी। इज़हार पर मलमल का लम्बा वारीक कुर्ता पहिने थी। दुपट्टा नहीं था, सिर के लम्बे-लम्बे बाल खुले और इधर-उधर बिखरे हुए थे। काले बालों की घटा में उसका गोरा और भरा मुँह बादल में घिरे चाँद-जैसा लगता था। मोहन को देखते ही उसने भाँहें सिकोड़ कर कहा—“कैदी, कल तूने घर अच्छी तरह नहीं झाड़ा। कोनों में कचरा जमा था। कुर्सी-मेज पर धूल छाई थी। अब्बा-जान ने जूते पहिने तो उनमें एक-एक इंच रेत थी, देखते ही आग-ब्रबूला हो गये, गनीमत हुई, तू यहाँ नहीं था। तुम लोग बेगार टालने नहीं यहाँ काम करने आये हो।”

“बीबीजी, माफी चाहता हूँ। मैं घर का झाड़ना-बुहारना क्या जानूँ? यह काम औरतें कर लेती हैं। दो-तीन दिन बता दोगी तो फिर कभी गलती नहीं होगी।”

सलीमा का मन क्रोध से भरा था। उसने गरज कर कहा—“झाड़ने-बुहारने का काम औरतों का है, और मर्दों का काम है औरतों पर हुक्मत करना? जैसे खुद नवाबजादे हैं। हट्टे-कट्टे होकर भी कमाया-खाया नहीं गया। कहीं दस-बीस की चोरी की और आ गये मुफ्त की रोटी तोड़ने जेल में। झाड़ना क्यों आयेगा? बैठे-बैठे खाने को जो मिलता है?”

घर मालिकिन भी अवसर क्यों खोती? सुबह-पुबह विषय मिला। गालियों के शब्द-कोष में जितने शब्द हैं उसने एक-एक करके क्रम से सुना दिये। मोहन को इसकी आशा नहीं थी कि एक जवान बेटी के आगे एक नौजवान को सम्य घराने की औरत ऐसी गालियाँ सुना सकती है? किन्तु उसे यह कहाँ मालूम था कि उस स्त्री की दृष्टि में वह पुरुष न होकर साधारण कैदी था।

“चल तुझे झाड़ना सिखाती हूँ”—कह कर सलीमा मोहन को कमरे में ले गई। उसने पहिला हाथ चलाया, धूल उड़कर सीधे लड़की पर गई। वह

झल्लाई—“बेवकूफ उधर से क्यों देता है, ! इधर से दे । तेरा सत्यानाश जाये, मुझे दुबारा नहाना पड़ेगा ।”

सलीमा सिर पर सवार न होती तो शायद काम अच्छा होता । यह करो, वैसा मत करो, यह क्या कर डाला—की बौछार ने उसके हाथ-पाँव को मुन्न बना दिया । मोहन का मस्तिष्क स्तब्ध था और सलीमा का दिमाग इतनी तेजी से काम कर रहा था कि कोई सिलसिला न था । एक ओर काम करने की इच्छा, दूसरी ओर सुन्दरी तरुणी के अनावृत्त सौन्दर्य को निहारने की उत्कट लालसा और उसपर बिजली का चमचम में चमकना । टेबल साफ करते समय हिलने से काँच का गिलास नीचे गिर कर टूट गया । लड़की के क्रोध का पारा अन्तिम बिन्दु तक चढ़ गया, दोनों हाथों को न रोक सकी । गृह स्वामिनी आवाज़ सुनकर दौड़ी आई । वाग्वाण और थप्पड़ प्रहार के ऊपर धमकी यह कि साहब को आने दे तेरी चमड़ी उधेड़ी जयेगी ।

मोहन गर्दन झुकाये खड़ा रहा । हृदय धधक रहा था । मस्तिष्क पर कोई नियंत्रण नहीं रहा था, इच्छा हुई, दोनों का गला घोट दूँ, बँगले को आग लगा दूँ और जब साहब आयेंगे तो पहिले मैं ही उनकी खबर ले डालूँ । किन्तु, किसी अज्ञान शक्ति ने हाथ-पाँव बाँध दिये थे । अभिमान का तीव्र हलाहल एक घूँट में पी गया । स्वयमेव हाथ काम करने के लिए उठे । साफ करने के लिये उसने दूसरा कप उठाया—सलीमा चिल्लाई—“अरे मुर्दार, रहने दे । पूरा सामान बर्बाद करना है ? रहने दे ! यहाँ से मुँह काला कर !”

“अच्छा बीबीजी, मैं बाहर आँगन साफ करता हूँ । दूसरे साथी को भेज दूँगा ।”—मोहन ने बड़े प्रयत्न से उत्तर दिया ।

“दूसरे साथी को भेज दूँगा ? फिर तू क्या यहाँ खाक छानने आया है ? अगर मैंने तुझ जैसे की अकड़ न निकाली तो मुझे खानबहादुर की लड़की कौन कहेगा ? अभी चाबुक लगाती हूँ । मैंने तुझ-जैसे कितने ही मक्कारों को सीधा किया है । मेरी तरफ घूर कर क्या देख रहा है ? चल काम कर ।”

“मैं मानता हूँ मुझसे गलती हुई । माँ-बेटियों ने जो सजा दी वह क्या कम है ? आप इतना समझिए मैं काम-बोर नहीं हूँ, दिल तोड़कर काम

करना चाहता हूँ । मैंने चाह कर नुकसान नहीं किया ।”—मोहन के स्वर में रुदन था ।

“अच्छा बातें बन्द कर । बाहर बत्तन माँजने पड़े हैं । जल्दी-जल्दी काम कर ।

मोहन काम करने लगा । उसने सुना—उसका एक साथी ऊँचे और मधुर स्वर में राग अलाप रहा है, दूसरे साथी हँस हँस कर अपनी प्रसन्नता प्रकट कर रहे हैं ।

×

×

×

×

दूसरे दिन बँगले में आते ही मोहन ने साथियों से कहा—“मैं बाहर का पूरा काम कर लूँगा । घर की सफाई के लिए तुममें से कोई चला जाये ।”

“क्या दो दिन में पेट भर गया ? तुम खेल में साथ न देकर सीधे भीतर चले जाते थे ?”—लच्छू ने पूछा ।

“अरे, यह मोनू भी छटा हुआ है । देखने में कितना भोला भाला दिखता है । वह खानबहादुर की लड़की है, न, उसे देखने जाता था । कल उसने कुछ कह दिया होगा”—तीसरे कैदी ने व्यंग-पूर्ण स्वर में कहा ।

“देखो भाई, इन बातों से मुझे दुःख होता है । मुझे यह अच्छा नहीं लगता ।”—मोहन ने रुठे मन से कहा ।

“सुन लो इसकी बातें । सच कहने वाला मारा जाता है ।”

दो कैदी अन्दर काम पर चले गये । मोहन कुदाली लेकर जमीन खोदने लगा । खानबहादुर ने बिलायती जाति का पौधा कहीं से मँगाया था । पौधा बड़ा था इसलिए गढ़ा भी ज्यादा गहरा होना चाहिए । जमीन ऊपर पपड़ीदार थी, इसलिए कुदाली ताकत से चलानी पड़ती और मिट्टी कम खुदती । मोहन तेईस साल का युवक था । उभरी छाती, मांसल भुजाएँ, मुँह का रंग कुछ गोरा और भरे हुए चेहरे पर ऐंठदार छोटी-छोटी मूँछें, बाँकापन ला रही थीं । उसकी चाल में मस्ती थी । जेल के भद्दे और बेमाप के कपड़ों में भी उसके शरीर की गठन छिपती नहीं थी । आधी बाँह की कमीज में उसकी मांसल और मछलीदार भुजाएँ बड़ी अच्छी लगती थीं । व्यायाम के कारण सुगठित शरीर ।

बार-बार कुदाली चलाने से भुजाओं की मांस पेशियाँ फूल गई थीं और साँस भरने के कारण छाती दो तीन इंच उभरी लगती थी । श्रम के कारण मस्तक पर कुछ पसीने की बूँदें आ गई थीं । जब सलीमा को मालूम हुआ कि कल वाला कैदी आज नहीं आया, तो उसे लगा जैसे उसका अपमान कर रहा है । वह कुछ झल्लाई-सी बाहर निकली, किन्तु दूर से मोहन के इस रूप को देख कर उसका क्रोध हवा हो गया । उसने अपने परिवार के पुरुषों को निकट से देखा था । दूर से पुरुषों को देखने का अवसर नहीं मिला । शेरवानी और सूट में उनके शरीर अच्छे लगते थे लेकिन कपड़े उतारने पर उनकी हड्डी-पसलियाँ और दुबले-पतले हाथ-पाँव कितने भद्दे लगते हैं । उसने सोचा, इस कैदी के पास कपड़े नहीं, फिर भी यह कितना सुन्दर है । मोहन अपने काम में लगा था । एक क्षण रुके बिना उसका हाथ चल रहा था, पसीना पोंछने का समय भी उसके पास नहीं था । सलीमा ने सोचा—कल मैंने इसे योंही काम-चोर कह दिया । इसमें कितनी फुर्ती है, फिर भी उसके चेहरे पर कितना भोलापन है, जैसे दुनिया की चालाकी और मक्कारी से इसका कोई ताल्लुक नहीं । वह ताकती रही । मोहन अपना काम करता रहा ।

“कैदी, आज तू घर साफ करने नहीं आया ?” लड़की ने उसके निकट जाकर प्रश्न किया । स्वर में तीखापन था, पर कल-जैसी नीरसता न थी ।

“नहीं आया ।”—मोहन ने कुदाली जमीन पर टेकी और सीधा-सा उत्तर दिया ।

“नहीं आया, सो तो मैं भी जानती हूँ, रे ! जो नहीं जानती वह जानना चाहती हूँ । तू क्यों नहीं आया ?”

मैंने कह तो दिया—“नहीं आया । दूसरा साथी चला गया है । मुझे झाड़ना नहीं आता ।”

“तुझे नहीं आता इसीलिए सिखाना चाहती हूँ । तेरे जैसे कामचोर को योंही कैसे छोड़ा जा सकता है ?”

“मैं यहाँ आराम तो नहीं कर रहा हूँ । आप लोगों को काम से मतलब है या काम सिखाने का स्कूल खोलना है ।” मोहन ने झुंझला कर प्रश्न किया ।

“स्कूल नहीं खोलना है, किन्तु तुझे झाड़ना जरूर सिखाऊँगी। आखिर तुम्हें किसी न किसी दिन यह काम करना ही है।”

“किसी दिन नहीं करना है इसलिए आज सीखने की जरूरत नहीं। जिसे करना होगा वह अपने आप कहीं सीख रही होगी। मुझे दोपहर तक यह पौधा लगाना है। काम करने दीजिए।”—और वह कुदाली चलाने लगा।

सलीमा को कुछ सूझा नहीं। उसकी इच्छा हुई कैदी के हाथ से कुदाली छीन लूँ और कहूँ, चल बड़ा आया काम करने वाला। लेकिन वह अपनी इच्छा कार्य रूप में परिणत न कर सकी। वह वहाँ से चली गई। आज इच्छा रहते हुए भी वह कल की तरह मोहन पर अधिकार नहीं जता सकी। उसे लगा कल उसने कैदी को जो थप्पड़ लगाया था, वह लौट कर जैसे उसी के मुँह पर पड़ा है। कैदी साफ-साफ कह देता कि कल तुमने मेरा अपमान किया, इसलिए मैं अन्दर काम करने नहीं आऊँगा, तुमसे बात नहीं करूँगा; तो शायद उसे इतना दुःख अनुभव नहीं होता। बिना उसकी ओर दृष्टि डाले, उसने काम का बहाना करके उसे हट जाने का आदेश इस तरह दिया कि कहीं कोई चिह्न दिखाई न देने हुए भी हृदय में बड़ा घाव बन गया। वह कैदी आज इतना अधिकार युक्त क्यों हो गया है और उसमें इतनी निर्बलता कहाँ से आ गई?

वह उद्विग्नता से दालान में जाकर इधर-उधर घूमने लगी। इच्छा हुई, बेत लेकर वह चुपचाप उसके पास जाय और पीछे से दो-तीन प्रहार करके पूछे, तुम्हारे पास बात करने की फुर्सत नहीं है, क्यों? लेकिन दूसरे क्षण उसे लगा, यह कैदी दूसरे कैदियों से कितना भिन्न है। दूसरे कामचोर और बातूनी हैं। और यह फुर्तीला, मेहनती और विनम्र! दूसरे कैदियों की तरह इसे भी मैंने कल थप्पड़ जमा दिया। यह अच्छा नहीं हुआ। मुझे चल कर उससे माफी माँगनी चाहिए। किन्तु तत्काल उसमें खानबहादुर का पितृत्व हुँकार उठा—छिः, मुझे माफी क्यों माँगनी चाहिए? मैं और कैदी से माफी माँगूँ? मुझे उसकी अकड़ निकालनी ही होगी। वह इधर-उधर चक्कर लगा रही थी और उसका मन भी विचार-धारा के दोनों छोरों को बारी-बारी से छू रहा था। इस स्थिति में मैं ने बेटी को पुकारा—

“सलीमा, जरा इधर आ, देख, रात का साग और कुछ पराठे बचे हैं। कैदियों को बाँट दे। साथ में थोड़ा मीठा भी दे देना। बेचारे खा लेंगे।”

कैदियों को जब वासी और बचा-खुचा भोजन मिला तो मारे खुशी के उछलने लगे। उन्हें इस तरह नमक, मिर्च और मसालेदार साग कहाँ मिलता है? सलीमा ने तय किया मोहन को नहीं दूँगी। वह भी क्या जानेगा। लेकिन फिर विचार आया न देना ठीक नहीं। जब मैं खाने को दूँगी तभी उसे पता चलेगा, मुझमें और उसमें क्या अन्तर है? मैं क्या कर सकती हूँ? थप्पड़ मार सकती हूँ तो मिठाई भी खिला सकती हूँ। उसकी उदासी दूर हो गई। वह उत्सुकता से मोहन के पास गई। वह उसी तरह मिट्टी खोद रहा था।

“कैदी, इधर आना।”—सलीमा ने उसे दूर से बुलाया।

“जी, मेरा काम अभी ख़तम नहीं हुआ।”—बिना सिर उठाये मोहन ने उत्तर दिया।

“अरे, काम छोड़कर जल्दी आ। तूने आज उठते ही अच्छे का मुँह-माथा देखा है। ले, मुबह-मुबह इतना बढ़िया खाना मिल गया।”

मोहन ने देखा लड़की के हाथ में थाली है और थाली में काफी भोजन है। नम्रता-पूर्वक कहा—“आप बुरा न मानें, मैं कैदी हूँ। मुझे जेल के नियमों का पालन करना चाहिए। जेल से बाहर की कोई चीज़ हमें नहीं खानी चाहिए। दारोगाजी की इज़ाज़त मिलने पर ही हम ऐसा कर सकते हैं।”

“दारोगा का हुकुम क्या खानबहादुर की बेटे से भी बढ़कर है?”—भौंहें तान कर लड़की ने गुस्से से कहा।

“हाँ, बड़ा तो है। आप सुपरिण्डेण्ट की बेटे हैं, लेकिन बेटे होने से तो दारोगाजी की अफसर नहीं बन सकतीं।”

“पाजी कहीं का!”—मारे क्रोध के सलीमा ने जमीन पर पाँव पटक़ा। मैं समझ गई—हम लोग मुसलमान हैं इसी लिए तू यह खाना वापिस कर रहा है न?”

“नहीं बीबीजी, यह बात नहीं है। जेल में आने के बाद कोई जात-पाँत बाकी बचती है! घर की मान-मर्यादा सब जेल के फाटक पर रह जाती

है । हम सब कैदी हैं, न कोई हिन्दू, न कोई मुसलमान ! अन्दर हम सब एक साथ खाते हैं, एक जगह उठते-बैठते हैं !”

“तू खाना नहीं चाहता ?”

“नहीं ।”

सलीमा चली गई ।

×

×

×

कुछ दिन और बीत गए । अब चाहने पर भी सलीमा किसी कैदी पर क्रोध नहीं कर सकती । वह मन ही मन बड़बड़ाती है, अपने मन की सारी भड़ाँस किसी पर निकालना चाहती है, किन्तु निकाल नहीं पाती । उसमें जो ज्वाला थी, वह जैसे अन्दर ही अन्दर उसे दग्ध किये दे रही है, किन्तु विवशता है, वह उस उष्णता से किसी दूसरे को उत्तप्त नहीं कर सकती । वह अपने मन से इतनी निर्बल कभी नहीं थी, किन्तु आज न चाहने पर भी न जाने किस अदृश्य शक्ति ने उसे निर्बल बना दिया था ।

उस दिन शाम को जोर की वर्षा हुई थी । लौटते-लौटते कैदी भीग गये । समय पर बैरक बन्द हो गये । कैदी अपने कपड़े कहाँ सुखायें ? सुबह उन गीले कपड़ों में भीनी-भीनी दुर्गन्ध आने लगी थी, किन्तु कैदी उन्हीं कपड़ों को पहिन कर काम करने गये । मोहन की तबीयत रात से खराब थी, अब उसका माथा और भी भारी हो गया । वह यदि चाहता तो उसके हिस्से का काम साथी कर डालते, किन्तु उसने उनका आग्रह नहीं माना । काम खत्म करके वह एक कोने में पड़ गया ।

सलीमा कुछ दिनों से अनुभव कर रही थी, उसके मन में एक दबी हुई लालसा है, जो मोहन के आगमन की प्रतीक्षा किया चाहती है । इस लालसा का पता चलते ही वह मन ही मन मोहन पर खीजती और कभी अपने ऊपर ही क्रोध करने लगती । इस क्रोध और खिजलाहट की जड़ में जो भाव काम कर रहा था, वह उस भाव से अपरिचित थी । जब उसे मोहन घर में काम करता नहीं दिखाई दिया तो वह इधर-उधर उसे खोजने लगी, लेकिन इस तरह जैसे वह अपने आपको यह ज्ञान नहीं कराना चाहती कि किसी को देख रही है, यों ही

यदि कोई मिल जाये तो देखने में कोई आपत्ति नहीं। मोहन को चुपचाप लेटा हुआ देख कर उसे कुछ आश्चर्य-सा हुआ। वह बँगले में आने के बाद लौटने तक काम में लगा रहता था। सलीमा पास गई। मोहन की आँखें बन्द थीं और उन बन्द आँखों की पलकों से जैसे कहरना या बेबसी छलक रही हो। उस का मुझाया-सा मुँह और शरीर देख कर सलीमा के आश्चर्य का स्थान लिया सहानुभूति ने।

“कैदी सो क्यों रहा है ?”

कैदी ने उत्तर नहीं दिया।

“सुनेगा नहीं, कैदी ?”—सलीमा को शरारत सूझी। उसने एक कंकर फेंका। मोहन ने आँखें खोलीं, देखा, सामने सलीमा खड़ी है। उसने अनुभव किया, यदि उसके मुँह से एक शब्द भी निकला तो उसके आँसुओं का बाँध टूट जायेगा। आज इतना परवश, असहाय और निर्बल था वह ! सलीमा ने उसकी डबडवाई हुई आँखों में वेदना, घृणा, ग्लानि, लज्जा, विवशता या उपेक्षा में से न जाने कौन-सा भाव देखा। कैदी से उत्तर न पाकर उसे क्रोध नहीं आया।

“कैदी आज इतना उदास क्यों है ?”

“योंही,” शक्ति समेट कर मोहन ने दो शब्द कहे।

“तबीयत खराब है ?”

“कुछ ऐसा ही लगता है।”

“फिर काम पर क्यों आया ? आज आराम करता।”

“जेल और आराम का कोई ताल्लुक भी है, बीबीजी ?”—इस बार वह अपने आँसुओं को रोक नहीं सका।

“कुछ खाया नहीं ?”

“भूक ही नहीं थी।”

“मेँ कुछ दूध और फल लाऊँ ?”

“नहीं। आपका यह पूछना ही मेरे लिए बहुत है।”

“पूछना ही बहुत नहीं है, रे। आज तू ना नहीं कर सकेगा।”

“एक कैदी पर आप को इतनी दया क्यों आती है, बीबीजी ?”

“क्यों आती है, इसे तू क्या समझेगा, पागल ! तुझ जैसा-गँवार समझना चाहे तब भी नहीं समझ सकता ।”

“अगर आप समझायेंगी तो क्यों नहीं समझूंगा ?”

“अच्छा, समझाती हूँ । बता तो तुझे कितनी सजा हुई है ?”

“छः महीने की ।”

“बस छः महीने की ही ! इसके बाद तो तू कैदी न रहेगा ।”

“नहीं, फिर मैं ऐसा काम ही नहीं करूँगा ।”

“उसके बाद तुझसे कोई झाड़ तो नहीं दिलवायेगा ?”

“नहीं ।” मोहन के माथे का भारीपन दूर हो गया । लेकिन वह उसी तरह लेटा रहा ।

“तू जानता है, मुझे कितनी सजा मिली है ?”

“आपको कौन सजा देगा ? बीबीजी ! कोई ज़रा-सी भी हुकुम-अद्वली करे तो आपका थप्पड़ उसका मुँह लाल कर देता है ।”

सलीमा को उस दिन की स्मृति हो आई । शर्म के कारण उसका मुँह नीचा हो गया । वह नम्रता से बोली—“यह सब कुछ तो अपने कैदीपन को छिपाने के लिए कर लेती हूँ, पागल ! हम औरतें खुदा के घर से ही उम्र-कैद लिखाकर लाती हैं । न जाने यह किस गुनाह की सजा है । तुम्हारे पाँव में लोहे की बेड़ियाँ हैं, इन बेड़ियों को देख कर तुम्हें धोखा नहीं होता । तुम हर वक्त जानते हो, मैं कैदी हूँ । मेरी आजादी छिन चुकी है । तुम मेरे जिस्म पर, हर औरत की देह पर जो हीरे-मोती, सोने-चाँदी, राँगे-रूपे का जेवर देखते हो, वह क्या है ? वे औरत की हथकड़ी-बेड़ी ही तो हैं । वह कितनी भोली है, यह सब जानते हुए भी अपने आपको कितना धोखा देती है, इन बेड़ियों को वह समझती है अपना जेवर, अपनी खुशकिस्मती ! मर्द एक सोने की अँगूठी बनवा कर औरत की अंगुली में पहिना दे तो उसकी खुशा का ठिकाना नहीं रहता । काश, वह समझ पाती, इन चीजों के लिए उसे कितनी बड़ी कुरबानो देना पड़ती है ! रेशमी साड़ी या बनारसी साड़ी पहिनकर हम अपने आपको जन्नत की हूर

मानने लगती हैं, लेकिन हमारे चारों तरफ दोज्जख की आग जलती रहती है। थोड़ी देर मर्दों के साथ मोटर में इधर-उधर सैर कर आई तो जिन्दगी की बहुत बड़ी तमन्ना पूरी हो गई। लेकिन कैदी, तुम यकीन रखो, जिस घर का आँगन जितना ही बड़ा है, जिस घर की चार-दीवारी जितनी लम्बी-चौड़ी है, उस घर की औरत के लिए उतना ही बड़ा जेलखाना होता है। इन बँगलों में रहनेवाली औरतों से वे औरतें लाख दर्जे अच्छी हैं, जो खुली हवा में मेहनत और मजदूरी करती हैं, और जिसे उसका मर्द शुब्हे की नज़र से नहीं देखता, घरवाले जिस की रखवाली के लिए पहरेंदार का काम नहीं करते।”

सलीमा का स्वर क्रमशः तेज होता गया। ऐसा प्रतीत होता था जैसे वह किसी दूसरे से बात न करके अपने आपसे बातें कर रही थी।

“बीबी, अभी तुम्हारी शादी नहीं हुई। क्या लड़की के लिए माँ-बाप का घर भी कैदखाना होता है?”

“तेरह-चौदह साल की उम्र तक शायद न हो, लेकिन इसके बाद तो माँ-बाप का घर भी जेलखाना बन जाता है। मैं तुम्हें अपनी जिन्दगी की एक कहानी सुनाती हूँ। हमारे अब्बाजान के एक दोस्त आसाम में रहते हैं। एक बार अब्बा इनसे मिलने गये। मैं भी साथ थी। उस समय मैं बहुत छोटी थी, लेकिन मुझे हर चीज याद है। अब्बाजान के दोस्त हमें घने जंगल में सैर कराने ले गये। वहाँ नये हाथियों को पकड़ कर पालतू बनाया जाता था। वहाँ के लोगों ने बताया, पन्द्रह-बीस साल पहिले एक गढ़ा खोदा जाता था और उसे घास-फूस से ढक दिया जाता। जंगली हाथी धोखे से वहाँ आ, गढ़े में गिर जाता। किन्तु अब तरीका बदल गया। अब झाड़ों में रस्सियों का जाल इस तरह डाला जाता है कि जंगली हाथी वहाँ फँस जाता है। फिर उसके पास पालतू हाथी भेजा जाता है। पालतू हाथी उसके बदन पर इन्सान के बड़प्पन का असर डालता है। कभी-कभी जंगली हाथी अपनी आज़ादी की बेहतरी जताने के लिए पालतू हाथी से मुकाबिला करता है, लेकिन दो-चार दिन में ही उसका जोश ठंडा हो जाता है। इस बीच में दस-बीस आदमी वहाँ जाकर जोर-जोर से शोर मचाते हैं। जंगली हाथी घुटने टेक देता है और फिर मेमने की तरह छोटे-से इन्सान की खिदमत करने

लगता है। यह सुन कर उस वक्त सिर्फ दिल-बहलाई हुई थी, लेकिन आज वह सारा नज़ारा आँखों के आगे आ खड़ा होता है। मैं उस जंगली हाथी और अपनी हालत में कोई फर्क नहीं पाती। हरेक औरत की जिन्दगी में यही नाटक रचा जाता है। आज जो लड़की है वह कल औरत बनेगी, जो दुनिया को अपनी नज़रों से नहीं देख सकती, बल्कि खुद अपने आपको भी, अपनी हर हरकत को भी वह आदमी की नज़रों से देखने के लिए मजबूर की जाती है। और यह सब होता है उन पालतू औरतों के ज़रिये जो पहिले ही अपना सब कुछ मर्द को दे चुकी होती हैं, कि उनका अपना कुछ नहीं होता और वे कहलाने को माँ, भाभी, बहिन या चाची-भाभी कहलाती हैं, लेकिन हरेक की जिन्दगी का मकसद यही है। वे खुद गुलामी में हैं और किसी औरत को वे आज़ादी की साँस नहीं लेने देंगी। दूसरे मर्द, वह मर्द जो उसका भाई होता है, बाप या चाचा होता है, अपने शोर-गुल से अपनी चीख-पुकार से औरत पर चाहे वह पाँच साल की लड़की ही क्यों न हो—असर डालता है, मर्द उस पर हुकूमत करने के लिए पैदा हुआ है।”—इतना कहने के बाद उसे क्षण भर के लिए प्रतीत हुआ, वह किस के सामने बोल रही है ! एक अनपढ़ कैदी के सामने ! इस विचार से वह कुछ ठिठक-सी गई। उसने श्रोता से प्रश्न किया—“लेकिन इन सब बातों को तू क्या जानेगा, कैदी ?”

“जानूँगा क्यों नहीं, बीबी ! क्या मेरे माँ नहीं है, बहनें नहीं हैं ? मैं ने क्या अड़ोस-पड़ोस में औरतों की हालत नहीं देखी है ? कहती जाओ, मैं अच्छी तरह समझता हूँ तुम्हारी बातों को।”

“अगर समझता है तो इतना और कहे देती हूँ। हम समुराल में पहुँच कर इतना तो समझने लगती हैं कि इस कैदखाने की दीवारें हमारी अपनी मेहनत से, हमारे अपने बलबूते पर बनी हैं। वहाँ जी बहलाव के लिए कुछ खिलौने होते हैं—बेटा-बेटी, खुद खाबिन्द, ननद, सास समुर...”

“मैं जब से यहाँ काम करने आता हूँ, सोचने लगा, बड़े घर की औरतें कितनी सुखी हैं। इतना बड़ा घर, इतने नौकर, हाथ से तिनका भी नहीं तोड़ना

पड़ता ।” —मोहन ने सलीमा की बात काट कर कहा । वह उठ कर बैठ गया था । सलीमा ने उसके नेत्रों में सहानुभूति की झलक देखी ।

“लेकिन यह सब दिखावा है, कैदी ! उस जेलखाने की तकलीफ को भुलाने के लिए औरत खुद इन चीजों में दिलचस्पी लेती है । नौकर-चाकरों पर हुकूमत करके वह अपने दिल को खुश कर लेती है, कि वह भी किसी पर हुकूमत करती है । उसका बेकार रहना तो और ज्यादा तकलीफदेह चीज है । तुम किसी कोठरी में बन्द किये गये हो ?”

“नहीं ।”

“तब तू बड़े घरों की औरतों की तकलीफ ठीक-ठीक नहीं समझ सकेगा । जिस कैदी को काम मिलता है, वह कैदी अपनी सजा आमानी से काट लेता है, लेकिन जिस कैदी को कोठरी में बन्द कर देते हैं वह अपनी सजा भुगतने के इस जरिये को भी खो देता है । हमारे लिए घर में काम नहीं होता, इसी लिए हम नये काम निकालती हैं और दिन भर की बेकारी दिमाग को परेशान रखती हैं । अच्छा जाने दे इन बातों को, मैं तुमसे सवाल करूँ तो ठीक-ठीक जवाब दोगे ?”

“हाँ ।”

“उस जवाब के पीछे बहुत बड़ी जवाबदारी है ।”

“रहने दीजिए ।”

“तुम्हें यहाँ और कितने दिन रहना है ?”

“सजा खत्म होने को है । पन्द्रह दिन होंगे ।”

“तू जेल से अकेला ही जायगा या किसी दूसरे कैदी की मदद भी करेगा ?”

“एक कैदी दूसरे कैदी की क्या मदद करेगा, बीबी जी ?”

इस बार सलीमा जरा शर्मा गई । उसके गालों पर कुछ ललाई आ गई । जमीन की तरफ देखते हुए वह बोली—“चारदीवारी से बाहर निकलने पर भी क्या तुम कैदी ही रहोगे ? इतने हट्टे-कट्टे रहकर किसी की मदद नहीं कर सकोगे ?”

“आपकी बातें मुझे समझ में नहीं आ रही हैं, आप साफ कहिए न ?”

वि० ४

“अभी समझने की जरूरत भी नहीं। वक्त आने पर समझ जाओगे। लेकिन मालूम होता है, तुम्हें कुछ तो समझाना ही पड़ेगा।—और कोई दूसरा कैदी नहीं है, जिसे तेरी मदद की जरूरत है। मैं तेरे साथ चलूंगी। ले चलेगा न ?”

“यह कैसा मज़ाक कर रही हैं, बीबीजी ! मैं गरीब आदमी, अपना ही पेट मुश्किल से भर पाता हूँ, आपको क्या खिलाऊँगा ?”

“क्या मैं पेट भरने के लिए तेरे साथ चल रही हूँ ? पेट के लिए यहीं क्या कम है ? अगर तू अपनी कमाई खिलाएगा तो हुकूमत भी करेगा ! मैं उस हुकूमत से बचना चाहती हूँ।”

“तब मेरे साथ आपकी गुज़र-बसर कैसे होगी ?”

“कैसे होगी, यह अभी नहीं मालूम। किसी न किसी तरह हो जायेगी, इतना भरोसा है। अगर कोई दूसरा काम न मिला तो मेहनत-मजूरी में भी तुमसे पीछे नहीं रहूँगी। यह न समझो, मैं बँगले में रह कर नाकारा हो गई हूँ। कुछ न होगा, पहाड़ पर पत्थर फोड़ने चले जायेंगे। मैं दिन भर किसी चट्टान की छाया में हथौड़ी से पत्थर फोड़ा करूँगी और तू टोकरे में भर-भर कर मोटर तक पहुँचा आना, पेट भरने को मिल जायगा।”

सलीमा का मुँह विश्वास से दमकने लगा।

कैदी खिल-खिला कर हँस दिया। हँसते-हँसते ही उसने सवाल किया—
“पत्थर फोड़ने वालों में आपको कोई रहने देगा ?”

“इसकी फिक्र तुझे क्यों है, कैदी ? आखिर खानबहादुर की बेटी हूँ। कोई आँख उठाकर देख तो जाय, आँख ही निकाल लूँगी मुर्दार की। और फिर तुम्हारे ये लम्बे-लम्बे हाथ किस दिन काम आयेंगे ?”

“हाँ, मेरे रहते किसकी सामत आई है। मैं अकेला दस के लिए भारी हूँ।” उसमें कई दिन का सोया हुआ पौरुष जाग गया। कैदी की छाती तन गई। ज़रा छेड़ने के लिए उसने व्यंग कसा—“लेकिन वहाँ घर साफ करने के लिए कोई कैदी तो नहीं रहेगा ?”

“देवता बना कर तेरी पूजा थोड़े ही करूँगी। तू कैदी न रहेगा तो क्या

राजा बन जायगा ? आखिर शुरू दिन से तुझे इतना सिखाया-पढ़ाया है, क्या वह बेकार ही जायगा ? अच्छा रहने दे इन बातों को, इसके लिए इतनी लम्बी उम्र बाकी है । मैं भूल गई थी । तुझे कुछ खिलाना है न ?”

“नहीं ।”

“नहीं क्यों ? कैदी ही कैदी की मदद न करेगा तो दूसरा कौन पूछने चला है । आज तेरी ना नहीं चलेगी ।”

और बिना उत्तर को प्रतीक्षा किये सलीमा तेजी से घर में चली गई । लगभग आधा सेर दूध, एक अनार और दो तीन सन्तरोँ के साथ वह वापिस आई । दूध देकर फल छीलने लगी । मोहन के ना-ना करने पर भी सलीमा “नखरे मत दिखा, खा ले” कह कर खिलाती गई । सुन्दर अँगुलियों का स्पर्श पाकर उन फलों में कितना माधुर्य आ गया था ! वह मुग्ध नेत्रों से सलीमा की तरफ टकटकी लगाये देख रहा था । और सलीमा आँखें झुकाये काम में लगी थी ।

×

×

×

“यह तूने अच्छा नहीं किया, मोहन ! तू यह काम करेगा, इसकी मुझे उम्मीद नहीं थी । जा अभी लौटा आ इसे ।”

“अब ले आया हूँ तो रखलो न, सलीमा ! आइन्दा न करने का वायदा करता हूँ ।”

“कोरे वायदे से काम नहीं चलने का । मैं पूछती हूँ, मेरे रहते आखिर तुम्हें इतनी हिम्मत कैसे हुई ? क्या एक बार की जेल से तेरा पेट नहीं भरा ? मैं समझती थी, तुमने जेल से सबक लिया होगा, मेरा लिहाज रखोगे, पुरानी आदत भूल जाओगे । क्या अब मैं वही हूँ जो तबीयत सुस्त होने पर फल खिला-ऊँगी ? पहले ही तेरा नाम नम्बरी लोगों में है ।”

“इसके सिवाय कोई दूसरा चारा भी तो नहीं था, सलीमा ! तुम्हारा नेकलेस बेचकर जितने रुपए लाया था वे खत्म हो रहे हैं । तुम्हें नया जेवर पहनाने से रहा । तुम्हारे गहनों पर मेरा क्या हक है ? इतनी बेगैरती मुझमें नहीं है कि घर में बैठा-बैठा मैं तुम्हारा पैसा खाऊँ ।”

“फिर वही पागलों-जैसी बातें करने लगा, कैदी ! मैं क्या तुझसे जुदा

हूँ ? जब मैं खुद तेरी हो गई, तो जेवर कहाँ बचे रह गये ? मैं खुद कोशिश कर रही हूँ, दरखास्त गई है । दस-पाँच दिन में किसी न किसी लड़कियों के स्कूल में जगह मिल जायगी । फिर इस वक्त अपने पास इतना है कि हम दोनों पाँच साल तक घर बैठे खा सकते हैं ।”

“लेकिन मुश्किल मेरी है । घर में बैठ कर खाया नहीं जाता और कहीं काम नहीं मिलता ! लोग कहते हैं कि एक बार का सजायापता है । पुलिस के रजिस्टर में नाम दर्ज है, तेरा क्या भरोसा । तुम्हीं बताओ इन लोगों को कैसे इत्मिनान कराऊँ ? आज जिस सेठ के यहाँ गया था, उसने मुझसे यही सवाल किया । मारे गुस्से के मेरे तन-बदन में आग लग गई । सोचा, इसे तो भरोसा कराना ही होगा । थोड़ी दूर पर ललाइन अपने बच्चे को खिला रही थी । मैंने कहा, ललाइन, बच्चा तो एक ही है, कितना खूबसूरत, कितना सुशील ! सेठानी यह सुनते ही मारे खुशी के फूल उठी ! दस-पाँच मिनट मैंने बच्चे को खिलाया । आले में सेठानी का यह कंगन रखा था, आँख बचा कर मैंने उठा ही तो लिया । अपने को रोक न सका । इन कंगन से चार-छः महीने का काम चल जायगा । राम ने चाहा तो तब तक कोई काम भी मिल जायगा । आखिर पेट तो भरना ही है ।”

“भाड़ में जाय ऐसा पेट ! इससे अच्छा यह है कि हम फाकाकशी करके अपनी जान दे दें । पराई दौलत पर तुम्हारा मन चला ही कैसे ? तुम्हारे इस काम से मैं मारे शर्म के ज़मीन में गड़ी जा रही हूँ । मुट्ठी भर चने खाकर पानी पी लूंगी, मगर हलवा-पूरी नहीं खाऊँगी । जाओ, उल्टे पाँवों जाओ, जिस का है लौटा आओ और आइन्दा चोरी न करने की कसम खाओ ।”

“आइन्दा के लिए मैं कसम खाने को तैयार हूँ । अब तो ले आया हूँ । मुझसे लौटाया नहीं जायगा । वह समझेगा मैं डर गया हूँ ।”

“वह कुछ क्यों न समझे, हमारा दिल पाक होना चाहिए ! जब गलती हो गई है, तो किसी के डर से उस गलती का न सुधारना अक्लमन्दी नहीं है । मैं चोर बनने या चोर के साथ रहने के बजाय अपने हाथों अपना गला घोट कर मर जाऊँगी ।”

मोहन कंगन लेकर चला गया ।

वह सजा खत्म करके घर आ गया था । सलीमा ने उससे पूरा पता ले लिया था । तीन-चार दिन बाद, प्रातः काल उसने देखा, घर के सामने टांगा खड़ा है और उसमें से सलीमा उतर रही है ।

मुहल्ले के लोगों में चर्चा हुई । किसी-किसी ने मुँह पर भी खरी-खोटी सुनाई । तरह-तरह की कहानियाँ घड़ी गईं, किन्तु सच्ची कहानी किसी को मालूम न थी । मोहन और सलीमा को मुहल्ले की चर्चा और बदनामी से कोई वास्ता न था । सलीमा को इस छोटे-से घर में कोई कमी अनुभव नहीं हुई । यं दो महीने कितनी जल्दी गुज़र गये । संसार में जैसे वे दो ही प्राणी थे और जैसे इस पृथ्वी पर कोई तीसरा प्राणी न हो । दोनों के पैर ज़मीन पर नहीं टिकते थे ।

मोहन भलमंसी से कंगन लौटाने गया तो हवन करते हाथ जला । सेठ जो ने कंगन हाथ में लेकर कहा—“वाह भाई, कलियुग में तुम्हारे जैसे ईमानदार कम ही होंगे । कुछ भी कहो, तुम जैसे धर्मात्माओं के सत पर ही तो धरती टिकी हुई है । इस तरह भला कौन लौटाता है । बड़े अच्छे आदमी हो । लो कुछ जल-पान कर लो ।”

बोलते समय सेठजी के चेहरे पर हल्की-सी मुस्कान थी । और उस मुस्कान के पीछे छिपी हुई थी उनकी क्रूरता, और बदले की भावना ! किन्तु प्रशंसा सुनने के बाद मोहन इतना खुश हो गया था कि उसकी दृष्टि उस तरफ नहीं गई ।

वह सेठ जी का आतिथ्य स्वीकार करने बैठा ही था कि सूचना पाकर थानेदार वहाँ आया और मोहन को हथकड़ी पहना हवालात ले गया ।

सलीमा ने सुना तो वह अचम्भे में रह गई । उसने सोचा, जब सेठ का माल सेठ को मिल गया तो पुलिस कौन होती है जो मोहन को गिरफ्तार करे ? सेठ का दिल कितना सख्त होगा ? क्या ऐसा हो सकता है ?

वह खुद थानेदार के पास गई, उसने सच-सच पूरा हाल कह सुनाया । इस पर भी वह न पसीजा तो उसने मिन्नतें कीं । मोहन का छूटना तो दूर, थानेदार

सलीमा से हो उल्टे-सीधे सवाल करने लगा । उसकी आँखों में क्रूरता थी, कि देखकर सलीमा सिहर उठी ।

एक घण्टे में ही दुनिया पूरी तरह बदल चुकी थी । उसका स्वप्न टूट चुका था । जिस हिम्मत के साथ वह घर से चली थी, वह न जाने कहाँ गायब हो गई । वह अपना व्यक्तित्व सुरक्षित रखना चाहती थी, उसे अपने ऊपर गर्व था, उसकी दृष्टि में पुरुष का कोई महत्व नहीं था । उसने अपने नारित्व और नारी की आकांक्षा का पोषण किया था । किन्तु सहसा उसे एक कमी अनुभव हुई । ऐसी कमी जिसकी खोल में उसका सब कुछ समा गया । उसकी आकांक्षा चकना-चूर हो गई, वह स्वयं मिटी जा रही थी ।

मुहल्ले के छैल-छबीलों ने उसे घेर लिया था । किसी ने दरवाजे पर धरना दिया, किसी ने चबूतरे पर धूनी रमाई । तरह-तरह के सवाल होने लगे । हमदर्द लोगों की कमी नहीं थी, लेकिन सलीमा के दर्द के बजाय, उन लोगों का अपना दर्द ही काफी था । यह एक नई दुनिया थी । कल्पना सुन्दर और मोहक होती है और यथार्थ ठोस और असुन्दर !

और सलीमा ने अनुभव किया, हमारे समाज में पुरुष का एक निश्चित और अनिश्चित मूल्य है, किन्तु नारी का कोई मूल्य नहीं, वह शून्य है । हाँ पुरुष की छत्र-छाया में ही उसका मनमाना मूल्य लगाया जाता है और वह अपने मन में ही अपना बढ़ा-चढ़ा कर मूल्य आँकती है । मनुष्य कैसा ही हो, उसकी छाया में नारी सुरक्षित है । उसका मन क्षोभ से भर गया । एक तरफ उसका व्यक्तित्व हुँकार उठता है, दूसरी तरफ उसकी निर्बलता उसके मन को झकझोरे दे रही थी । इसी समय थानेदार अपने फौजी जूतों की आवाज़ करता घर में आया और बोल गया—“मैं थोड़ी देर में लौटता हूँ, तुम्हारा बयान लेना है ।”

सन्ध्या हो चुकी थी और रात्रि की कालिमा जैसे-जैसे गहरी होती जा रही थी उसके मन में वैसे-वैसे विषाद छा रहा था । वह ग्लानि में डूब गई । इस सब पर आफत यह थी कि रात के वक्त थानेदार आयेगा, बयान लेने ! वह दिन में ही क्यों नहीं आया ? क्या पूछेगा ? इस समय याद आई उसे अपने माँ-बाप

की। ज्यादा सोचने-विचारने का समय नहीं था। वह अपना थोड़ा सा सामान लेकर स्टेशन पहुँची।

भोर होने से पहिले गाड़ी वहाँ पहुँच जाती थी और सलीमा के बाप का घर स्टेशन से ज्यादा दूर नहीं था। सलीमा जब घर में पहुँची तो खान बहादुर साहब मसनद पर लेटे-लेटे नवाबी हुक्का गुड़-गुड़ा रहे थे। अपने सामने सलीमा को देख कर वह कुछ सहम-से गये, जैसे सपना देख रहे हों। फिर उन्हें लगा, यह सलीमा नहीं है, सलीमा मर गई है और यह चुड़ैल बनकर यहाँ आई है।

हाँ, उनके लिए सलीमा मर चुकी थी। जिस दिन सलीमा घर से गई, उस दिन उनमें काटो तो खून नहीं था। खबर दवा कर रखी गई। शाम को पत्नी को स्टेशन पर भेज दिया और दूसरे दिन वह घर लौट आई रोती-चिल्लाती। रिश्तेदारों और दोस्त-अहवाबों को सूचना दी गई, सलीमा अपने माँ के साथ ननिहाल जा रही थी, रास्ते में अचानक उसे हैजा हुआ और आधे घण्टे में वह खत्म हो गई। स्टेशन के कुलियों ने उसे वहीं दफना दिया। कुछ दिनों तक नाते-रिश्तेदार मातम-पुरसी के लिए आते रहे ! झूठा नाटक खेलते-खेलते खान बहादुर को भी यकीन हो गया था, उनकी बेटी मर चुकी है। वे निश्चितता से अपने काम में लग गये !

सलीमा को आज फिर अपने सामने देखकर वे अचम्भे में रह गये। वे इस के लिए तैयार नहीं थे। इस घटना के आतंक का बोझ वे नहीं सँभाल सके। उन्होंने कहा—“यहाँ आते वक्त क्या तुझे रास्ते में कोई कुआँ-बावड़ी नहीं मिली ? और वे चुपके से उठ कर दूसरी तरफ चले गये।”

सलीमा उल्टे पाँव बँगले से निकली। अभी उजाला नहीं हुआ था। चलते-चलते उसने कहा—“अब्बा जान, धवराइए नहीं, आपको मेरे लिए किसी बावड़ी की तलाश नहीं करनी पड़ेगी।”

सलीमा अर्ध-मूर्च्छित-सी बाहर आई। उसे रास्ता नहीं सूझ रहा था। एक-दो बार ठोकर भी लगी, किन्तु उसकी तन्द्रा नहीं टूटी। उसके अन्तःकरण ने निर्णय कर लिया था, किन्तु उसे स्वयं ज्ञात न हुआ, यह निर्णय क्या है और इसी लिए उसने निर्णय के औचित्य पर विचार नहीं किया।

बँगले से लग कर सड़क पर पीपल का छोटा पेड़ था । पीपल के नीचे उसे शीतलता अनुभव हुई । वह वहीं रुक गई । उसने अपने बक्स से साड़ी निकाली । एक कागज़ पर लिखा—“मेरा सामान मेरे बाप...खान बहादुर को दे दिया जाय । मेरी मौत सिर्फ मेरी अपनी बदकिस्मती की वजह से हो रही है ।” कागज़ को ट्रंक के कुन्दे में अटका कर वह बँगले के फाटक की दीवार पर चढ़ी । एक शाख पर उसने साड़ी अटकाई और फन्दा बना कर वह स्वयं उस पर झूल गई !

×

×

×

खान बहादुर के देखने से पहिले ही पुलिस वहाँ पहुँच गई थी । चिट्ठी पढ़ने पर खान बहादुर को बुलाया गया ।

खान बहादुर ने जवाब दिया—“मैं इसे नहीं पहिचानता यह, मेरी बेटी नहीं है ।”

और खान बहादुर उस लाश की तरफ आँख उठाकर भी नहीं देख सके ।

हाँ, वह उनकी बेटी नहीं थी ! उनकी बेटी सलीमा तो दो महीने पहिले ही गुज़र चुकी थी ।

—×—

हत्या

मेरे अन्तराल में यह कैसा विस्फोट हो गया कि कहीं कोई स्थान, कहीं कोई अवरुद्धता शेष नहीं रह गई ! पलक मारते-मारते समूची सृष्टि विलीन हो गई । सर्वत्र शून्य, शून्य-ही-शून्य दिखाई देता है । वह कौन-सा पदार्थ था जो अपनी व्यापकता से इस महाशून्य को आवृत किये हुए था ? जो था, वह अब चला कहाँ गया ? चारों ओर साँय-साँय ! संकीर्ण जेल की इस छोटी-सी कोठरी में इतनी सामर्थ्य नहीं कि वह मेरे शरीर की तरह मेरे ममत्व को, मेरी आत्मा को चारों ओर से घेर कर घनीभूत अन्धकार का निर्माण कर सके ।

जेल की ये बड़ी-बड़ी दीवारें, ये बड़े-बड़े ताले, मोटे-मोटे सीखचे और ये हथकड़ी-बेड़ियाँ और ये विधि-विधान अपने में इतनी शक्ति नहीं रखते कि मुझ पर, जो वास्तव में मेरा 'मम' है, अपना भार डाल सकें, उसे घेरकर कुचल सकें ।

मेरे चारों ओर लाख-लाख संस्करण करके प्रकट होने वाले किसके नेत्र हैं ये ? लाख-लाख होते हुए भी दो और दो होते हुए भी लाख-लाख ! इनमें एक घनिष्ठ परिचय, अनिवार्य आकर्षण क्यों है ? ये मुझे अपनी ओर क्यों खींच रहे हैं ? इन नेत्रों के साथ-साथ एक धुँधली-सी रेखा, अगणित रेखाओं का समूह अपने में छिपाये, मेरे मनश्चक्षुओं की असमर्थता के कारण प्रकट होकर भी छिप जाती है । यह रेखा-समूह मेरे दाएँ, बाएँ, सामने, जिधर दृष्टि जाती है, विस्तृत होता है, फैलता है, परिभ्रमण करता है, एकाकार होकर केन्द्रीभूत हो जाता है और फिर लुप्त हो जाता है । मेरा मन अपनी समग्र शक्ति लगाकर इन रेखाओं में समन्वय, सन्तुलन स्थापित कर पाता है, घण्टों में; और ये रेखाएँ एकत्र होकर भी बिखर जाती हैं । जैसे गुलदस्ता बनाने के लिए कोई फूलों को सँवारे और फूल अपने आप अथवा जरा-सा बहाना पाकर तितर-बितर हो जाएँ । माला सम्पूर्णता को पहुँचने और जरा-सा खिंचाव पाकर धागा टूट जाए, फूल बिखर जाएँ ! क्या क्षण भर के लिए इन रेखाओं को एकत्र

करके मैं उस समष्टि का अवलोकन कर सकूंगा, जो इस समय अतीन्द्रित लोक की वस्तु बन चुकी है ?

कुछ संकुचित-से, अर्थ-भरे ये वाचाल नेत्र ! हृदय की अनन्त आकांक्षाओं को अपने तिल मात्र के दृष्टि बिन्दु में समेटकर मेरी ओर ताकने वाले ये नेत्र ? उस दिन ऐसे ही तो थे ये ! कितनी विवशता और असमर्थता है इन नेत्रों में ! यदि वह आकृति प्रकट नहीं होती तो उसकी कृतियाँ मेरे सम्मुख क्यों प्रकट होती हैं ?

मैं हत्यारा हूँ ! हत्या करने वाला हत्यारा होता है । मैंने हत्या की है, इसलिए मैं हत्यारा हूँ ।

हाथ भर के फासले से अपने दोनों हाथों में दो सीखचों को पकड़कर बन्द कोठरी में खड़ा-खड़ा शशांक सोच रहा है । उसके मस्तिष्क में प्रश्नों की अटूट श्रृंखला चल रही है । बीच-बीच में सिर उठाकर वह सामने की दीवार पर पुते हुए तारकोल की कालिमा को देखता है । कभी उसकी भुजाएँ तन जाती हैं, वह सारी शक्ति लगाकर सीखचों को अपनी ओर खींचता है और फिर अपनी निष्फलता से झुंझलाकर अपने वालों को पकड़कर गर्दन हिलाता है ।

घटना का पूरा चक्कर काटकर उसका मन फिर वहीं लौट आता है, जहाँ से उसने सोचना शुरू किया था । उत्तरी ध्रुव से बाहर निकालने के लिए प्रस्थान करने पर भी मनुष्य पृथ्वी के अन्दर ही घूमता हुआ एक दिन अकस्मात् अपने को उसी उत्तरी ध्रुव की बर्फीली हवा में ठिठुरता हुआ पाएगा । उस घटना ने उसके मन को चारों ओर से कवच की तरह घेर लिया है, जिसमें से बाहर का कोई प्रभाव उसके हृदय तक नहीं पहुँच सकता । किन्तु उस कवच की जकड़ किसी प्रहार से कम दुःखद नहीं थी ।

शशांक गिनती के बाद जब रात में सो जाता तो रह-रहकर किसी के खाँसने की कर्कश ध्वनि सुनकर वह उठ बैठता और फिर सूनी दृष्टि से अपने चारों ओर फैले हुए अन्धकार को चीरकर कुछ देखने के लिए घण्टों व्याकुल बैठा रहता ।

वह, जो उसकी जीवन-सहचरी बनकर आई थी, उसके साथ चल नहीं सकी । साथ चलने के लिए उसने गति शेष नहीं रखी ।

उसका नाम था माया । माता-पिता की एकमात्र सन्तान । उसके बाह्य में कोई विशेष आकर्षण नहीं था । साँवला रंग । छोटे-छोटे नेत्र । न जाने उन छोटे-छोटे नेत्रों के किस कोने में असीम भोलापन, असीम निश्छलता भरी थी । उसकी आकृति एक दर्पण के समान था, जिसमें उसका हृदय प्रतिबिम्बित होता था । और फिर भी ऐसा लगता था, उसमें कुछ है, जो गोपनीय है, अप्रकट है ।

ससुराल आने के तीन-चार दिन बाद उसे ज्वर आया और उस ज्वर ने अन्त तक उसका साथ दिया । वह ज्वर उस समय अधिक चिन्ता का विषय बन गया जब कि कुछ दिनों बाद डाक्टरों ने उस ज्वर को क्षय की संज्ञा दी । अच्छे-से-अच्छा उपचार हुआ, सेनिटोरियम में रखा गया, किन्तु क्षय जैसे अक्षयता का वरदान लेकर आयी थी ।

माया के निकट संसार का कोई अस्तित्व नहीं था । संसार की यह अज्ञानता थी कि वह अपने निकट माया का अस्तित्व मानता था । वह पलंग पर लेटी-लेटी दिन भर सोचा करती । अधिकांश समय उसकी आँखें बन्द रहतीं । दूर से देखने पर प्रतीत होता, कोई ध्यानमग्ना योगिनी है । अनुमान नहीं लगाया जा सकता था कि वह कुछ सोच रही है, निद्राभिभूत है अथवा उसे किसी चिन्ता ने स्पर्श किया है ।

उसका एक पृथक् संसार था, जिसमें अन्य व्यक्ति को प्रवेश करने का अधिकार नहीं था ।

कभी उसमें परिवर्तन दिखाई देता, अकस्मात्, अकारण ! वह खाट छोड़कर इधर-उधर टहलती, घण्टों धूप में बैठी रहती । साड़ी पर बेल-बूँटे निकालने बैठती तो थकने का नाम न लेती । सास कहती—“रहने दो, बेटी ! तुम्हारी तबियत खराब है, बेटी ! ज्यादा मेहनत न करो ।”

वह चट से उत्तर देती—“नहीं, माता जी, मैं अच्छी तो हूँ । आप लोग व्यर्थ ही चिन्ता करते हैं ।”

उसने प्रत्येक उपचार को निर्विरोध ग्रहण किया था । समय पर अपने आप ओषधि ले लेती । घर का कोई बड़ा आदमी उसके सामने आता तो वह

विनम्र होकर अभिवादन करती । छोटे बच्चों के प्रणाम को मुस्कराकर स्वीकार करती । जब उससे स्वास्थ्य-सम्बन्धी प्रश्न होता तो वह उत्तर देती—आप लोग मुझे बीमार क्यों समझते हैं ? मुझे हुआ क्या है ?

घर के बच्चों-बड़ों को आदेश था, कोई माया के पास देर तक न ठहरे । माया इस आदेश और इस आदेश की आवश्यकता से परिचित थी । वह अवसर नहीं आने देती थी कि किसी को उसके पास जाने की आवश्यकता पड़े ।

और शशाङ्क चाहता था, वह अपनी पत्नी के पास बैठे, उससे क्षण भर के लिए भी दूर न हो । किन्तु घरवाले उसे वहाँ जाने नहीं देते थे । घरवालों का आँख बचाकर किसी तरह वह माया के पास पहुँचता तो वह उसे उल्टे पाँवों लौटने के लिए विवश करती । कहती—क्यों आए हैं आप यहाँ ? कोई देखेगा तो क्या कहेगा ? और फिर मुसकराकर कहती, जाइए न ?

शशाङ्क उसकी मुसकान से मुग्ध हो जाता, किन्तु वह उसके आदेश को टाल नहीं सकता था ।

अधिक सम्पर्क न रहने पर भी, खुलकर वार्त्तालाप न करने पर भी, शशाङ्क के जीवन का एकमात्र केन्द्र थी माया । माया के अतिरिक्त उसके लिए कुछ भी नहीं था । वह प्रतिभाशाली, शिक्षित युवक अपनी समस्त आकांक्षाओं को भूलकर स्वस्थ माया को कल्पना करता और कल्पना में ही अपनी माया को लेकर नव-सृष्टि का निर्माण करता ।

जाड़े के दिन थे, माया आँगन में बैठो धूप सेवन कर रही थी । उसमें रक्त-मांस नाम मात्र को भी शेष नहीं थे । ऐसा लगता था, जैसे किसी ने ऊबड़-खाबड़ हड्डियों को एक चमड़े की चादर में ढोला-ढाला बाँधकर रख दिया है । मुख पर वही चिरपरिचित भोलापन था । वही निश्छलता थी । मुख के आकर्षण में विशेष अन्तर नहीं पड़ा था । शशाङ्क एक खम्भे के सहारे खड़ाखड़ा माया को निहार रहा था । एकाएक शशाङ्क की आँखों से अविरल धारा बह निकली ।

माया ने उसकी ओर देखा तो वह अपनी निर्बलता भूल गई । उठकर शशाङ्क के पास आई । शशाङ्क का हाथ पकड़कर वह उसे अपने कमरे में ले गई । अपने आँचल से उसके आँसू पोंछते हुए माया ने हँसकर कहा—“आप यह

क्या पागलपन कर रहे हैं ? पुरुष रोता है कभी ! मेरी आँखों में भी कभी आपने आँसू देखें हैं ?”

किन्तु शशाङ्क के आँसू रुकते नहीं थे, वह अपना सिर नीचा किये बैठा था । उसकी आँखों से टप्-टप् आँसू गिर रहे थे ।

माया ने उसका सिर अपनी गोद में रख लिया । एक हाथ से शशाङ्क का सिर दबाते हुए दूसरे हाथ से उसे गुदगुदाकर उसने कहा—“हँसिए, आप हँसिए न ! अच्छा आप हँसेंगे नहीं ? तो फिर माता जी को बुलाती हूँ मैं !”

और माया स्वयं खिलखिलाकर हँस दी ।

इस आग्रह में शक्ति थी, जिसने शशाङ्क के आँसू रोक दिये । वह रुआँसे मुख से मुसकराने का प्रयत्न करने लगा ।

माया ने मीठी ताड़ना के स्वर में कहा—“अब फिर कभी ऐसा न कीजिए।”

यह कुछ क्षणों का साथ ! शशाङ्क को प्रतीत हुआ, माया का सारा मौन, सारा रहस्य, सारा आवरण दूर हो गया है और वह निरावृत माया उसके हृदय में घुलकर एकाकार हो रही है ।

माया अधिक बीमार हो गई । अब उससे मिलने के लिए शशाङ्क को कोई नहीं रोकता । उसे मिलने के लिए अवसर दिये जाते थे ।

माया का कमरा बदल दिया गया । वह कमरा शशाङ्क के कमरे के पास ही था ।

वह रात ? वह रात क्या कभी भूली जा सकेगी ? दस-साढ़े दस वजे शशाङ्क को खाँसने की ध्वनि सुनाई दी । खाँसी शब्द से उस क्रिया को पूरी तरह व्यक्त नहीं किया जा सकता । खाँसी का ढेर था जो एकबारगी ही मुँह से निकल जाना चाहता था । खाँसी की एक अटूट शृंखला, जो आरम्भ हुई तो पूरे पन्द्रह मिनट पश्चात् विराम लेती । प्रति क्षण अनुभव होता, आगामी क्षण खाँसी रुक जाएगी और खाँसी के साथ ही हृदय की धड़कन भी । माया का बायाँ फेफड़ा अधिक व्याधि-ग्रस्त था । वह शय्या पर पड़ी-पड़ी हाँफ रही थी । उसकी साँस में भयानक घरघराहट थी, रोमांचकारी गुञ्जन था ।

शशाङ्क अनुभव करने लगा, वह पलंग पर नहीं है, कमरे में नहीं है, किसी

स्थूल वस्तु पर नहीं है । आकाश के किसी कोने में वह सिकुड़ा हुआ लटक रहा है । माया के कमरे में जाने का उसे साहस नहीं होता था । आधी रात गये वह माया के कमरे में गया और पलंग के एक कोने पर बैठ कर धीरे-धीरे माया का माथा दवाने लगा ।

माया न हिली न डुली । उसी तरह लेटी रही । उसके मुख पर मुसकान दीड़ गई । आँखें बन्द किये वह दिव्य आनन्द का अनुभव कर रही थी । तीन चार मिनट बाद उसने अपने हाथ में शशाङ्क का हाथ पकड़ा, कुछ दबाया और उसी तरह बिना आँखें खोले वह बोली—“आप ? आप आ गये यहाँ ? किस तरह पहुँचे यहाँ तक ? अच्छा किया—”

शशाङ्क स्तब्ध रह गया । वह कुछ सहमकर बोला—“माया, माया, क्या तुम कोई स्वप्न देख रही थी ? मैं हूँ ! जरा आँखें तो खोलो !”

माया सन्न रह गई । उसको मुसकान विलीन हो गई । उसने आँख खोल कर शशाङ्क की ओर देखा । उसकी दृष्टि स्थिर हो गई थी । शशाङ्क समझ नहीं सका कि इस दृष्टि में आश्चर्य है अथवा उत्सुकता ।

काँपते हुए स्वर में माया ने कहा—आप हैं ? फिर कुछ हँसने का प्रयत्न करते हुए वह बोली—“इतनी रात गए आप यहाँ क्यों आए हैं ? आप अभी तक सोये नहीं !” अपनी बात समाप्त करके जैसे ही वह बाईं करवट ले, उसके मुँह से वेदना भरी आह निकली । वह करवट न ले सकी । और फिर खाँसी क्षण भर के लिए नहीं रुकी ।

खाँसी रुकी तो शशाङ्क ने कहा—“माया, तुम जीवित कैसे हो ? इतनी भयङ्कर खाँसी !” स्वर में सहानुभूति की अपेक्षा दया अधिक थी ।

अपनी खरखराती आवाज में मधुरता लाने का प्रयास करते हुए माया ने कहा—“आज की रात तो बहुत आराम से कट रही है । कोई विशेष बात नहीं है, अब आप जाइए ।”

चारों तरफ सन्नाटा छाया हुआ था ।

शशाङ्क स्तब्ध बैठा रहा । उठा नहीं, उसी तरह सहलाता रहा ।

दूसरे दिन रात में, उसी समय वह माया के कमरे में पहुँचा । माया लेटी

हुई छत की ओर ताक रही थी। चुपचाप। शशाङ्क के पहुँचते ही वह कुछ मुसकाई और बोली—“आइए, बैठिए !”

शशाङ्क के लिए यह स्वागत अनपेक्षित था। वह बैठ गया। उसके केशों पर हाथ फेरने लगा।

माया की आकृति में गम्भीरता छा गई। उसने गम्भीरता के साथ कहा—
“आपका क्या मत है, स्त्रियों में आत्मा होती है या नहीं ?”

“होती क्यों नहीं ? स्त्री-पुरुष, गाय-बैल ये तो शरीर के भेद हैं ? आत्मा तो एकरूप है। उसमें कोई भेद नहीं होता। देह, अथवा यौनि कह लो, कर्मानुसार मिलती है।”

“अच्छा, आप यह बताइए, आत्मा में परिवर्तन होता है या नहीं ?”

“नहीं, कुछ भी नहीं। आत्मा अपरिवर्त्तनशील, अनादि, अनश्वर और अविकृत है !”

“तब स्त्रियों में आत्मा नहीं होती ! यदि स्त्रियों में आत्मा है, तो मैं कहूँगी—आत्मा कोई चीज नहीं। स्त्री के स्वामी, अभिभावक, पालक, उनकी अपनी कृति और सब कोई बदल जाते हैं। इन सबके साथ-साथ उसे भी बदलना पड़ता है। यह बदलना, यह परिवर्त्तन इतनी स्वाभाविकता के साथ होता है, कि मैं कहूँगी वह अपने आप बदलती है। उसका गृह, कुल, गोत्र, नाम सभी कुछ बदल जाते हैं। आप ही बताइए, उसमें अपरिवर्त्तनशील आत्मा कैसे रह सकती है ?”

शशाङ्क चुप बैठा रहा बिना उत्तर देने की कुछ चेष्टा किये ही। माया तकिए के सहारे बैठ गई। उसने अपने नेत्रों को संकुचित किया। उसके हृदय की सम्पूर्ण शक्ति उस समय तिलमात्र के दृष्टि-बिन्दु में समाई हुई थी। उन नेत्रों में एक याचना थी, याचना के साथ भोलापन था। वह कुछ चौंकी।

सहमी हुई शशाङ्क को एकटक देखती हुई वह बोली—“आप मुझसे प्रेम करते हैं ?”

शशाङ्क चुप।

“आप मुझसे प्रेम करते हैं ?” फिर वही प्रश्न । पहले की अपेक्षा अधिक दृढ़ स्वर में ।

“अब मैं अपने उत्तर को ध्वनि में व्यक्त नहीं कर सकता ।” स्वर में कम्पन था ।

“अच्छा, तब यह लीजिए ।” कहकर माया ने अपने तकिए के नीचे से नङ्गा छुरा निकालकर शशाङ्क के हाथ में दे दिया ।

छुरा बिजली के प्रकाश में चमक उठा । शशाङ्क के रोम-रोम में बिजली दौड़ गई । वह अपने आपको सँभाले, इतने में माया ने आवेशपूर्ण स्वर में कहा—
“जो जितना प्रेम कर सकता है, वह उतनी ही घृणा भी कर सकता है, प्रेम स्पष्ट है, और संहारक भी । मैं आपके प्रेम में सर्जन नहीं, संहार देखना चाहती हूँ । लीजिए, एक क्षण की देर न हो । लीजिए ।”

माया एकटक उसी याचनापूर्ण दृष्टि से शशाङ्क को ताक रही थी । उन नेत्रों में एक अनिवार्य आदेश था, जिससे शशाङ्क खिंचा जा रहा था । वह खड़ा हुआ । उसने छुरा हाथ में लिया । भुजा कुछ काँपी । किन्तु एक क्षण बाद, उसकी पूर्ण शक्ति से प्रेरित छुरा माया की रक्त-रिक्त छाती में घुस गया ।

माया की गर्दन तकिए पर ढुलक गई । वह स्थिर हो गई । आह भी न निकली ।

शशाङ्क छुरा निकाल कर चला गया ।

प्रातः जब शशाङ्क की आँखें खुलीं, उसने अपने को पुलिस थाने में पाया । उसे स्मरण हुआ, आधी रात के समय किसी अदृश्य शक्ति से खिंचा हुआ वह उस जगह आ गया था ।

उसके मुकदमे को सुनने के लिए अदालत खचाखच भरी रहती थी । प्रत्येक नेत्र उसकी ओर घृणा के साथ देखता । ये नेत्र उसे धिक्कारते हुए कहते—
नीच ! पापी ! हत्यारा !

वह सुनता, लोग चर्चा करते थे—“इस हत्यारे को देखो, जिसने बीमार पत्नी से जल्दी छुटकारा पाने के लिए, दूसरे विवाह की शीघ्रता में, अपनी मरती हुई पत्नी को, रात के समय छुरे से मार दिया ।”

हत्यारा ! पापी !

एक दिन मुकदमा सुनने के लिए माया की माँ अदालत में आई । उसने एक बार शशाङ्क की ओर देखा और फिर घृणा से मुँह मोड़कर दूसरी तरफ देखने लगी ।

इन घृणापूर्ण दृष्टियों के आघात से शशाङ्क कभी विचलित नहीं हुआ । इन हजारों नेत्रों को तिरोहित करते हुए उसकी ओर दो नेत्र ताकने लगते, जिनमें याचना थी, निश्छलता थी । ये नेत्र उसकी ओर एकटक देखते रहते ।

×

×

×

एक दिन वार्डन ने उसकी कोठरी का दरवाजा खोला । उसे निर्णय सुनाया जानेवाला था । उसे विश्वास था और वह चाहता था फाँसी की मजा हो ।

वार्डन ने कहा “तुम छोड़ दिये गए !”

“छोड़ दिये गए ? क्यों ?” शशाङ्क ने आश्चर्य के साथ पूछा ।

“प्रत्यक्ष साक्षी के आभाव में आप निर्दोष सिद्ध हुए हैं ।”

“अरे !” शशाङ्क के मुँह से एकाएक ही निकल गया ? क्षण भर बाद ही वह खिलखिलाकर हँसा । हँसा, खूब हँसा ।

जेल के प्रमुख द्वार से निकला तो शशाङ्क को कुछ दिखाई नहीं दे रहा था । मार्ग नहीं था, मकान नहीं थे, मनुष्य नहीं थे । उसे दिखाई दे रहे थे, वे ही दो याचनापूर्ण नेत्र । निमन्त्रण देते हुए-से ।

वह धीमे-धीमे चल रहा था । जेल के सामने से होती हुई जो सड़क नगर की ओर जाती थी, वह काफी ढालू थी । उस ढालू सड़क के बीचों-बीच शशाङ्क जा रहा था ।

पीछे से, अपनी पूर्ण गति में दौड़ती हुई, फौजी लारी आ रही थी ।

शशाङ्क आकाश की ओर देखते हुए हँस रहा था । उसे दो नेत्र, बृहदाकार में, दिखाई दे रहे थे जिनमें याचना थी, निमन्त्रण था ।

ऐं ऐं ऐं..... ।

हार्न बज—

भों, भों, भों ।

फिर—

धुर्र, सर्र घप्प—

एक अट्टहास ?

और फिर—

—×—

प्रेम के लिए

सन् १९४२ के तूफानी दिन । सितम्बर बीत चला था ।

अकस्मात् उस छोटे स्टेशन पर डाक गाड़ी के ठहरने से उसे आश्चर्य हुआ । वह वहाँ चबूतरे जैसे नाम मात्र के प्लेटफार्म पर निरुद्देश घूम रहा था । माल-गाड़ी अगले स्टेशन से छूट चुकी थी, एक्सप्रेस को वहाँ कुछ देर और ठहरना था । गाँव की मामूली पुलिस चौकी पर जैसे जिले का बड़ा पुलिस अफसर पहुँच गया हो । स्टेशन मास्टर अकेला सकपकाया-सा इधर से उधर चक्कर काट रहा था ।

तीसरे दर्जे के डिब्बे में वहाँ एक व्यक्ति सवार हुआ, आयु २५ से अधिक नहीं होगी । तीन-चार मास से हजामत न बनने के कारण सिर और दाढ़ी-मूँछ के बाल बढ़े थे । इधर-उधर फैले बालों से उसका मुँह भद्दा-सा लगता था । फटी मिर्जई, घुटनों तक की धोती, कन्धे पर पड़ी गाढ़े की मैली चादर, चोटी तक ऊँचा लट्टू, यह सब देखकर किसी को उसके गँवई-गाँव के साधारण किसान होने में सन्देह नहीं होता था । पंजों से ऊपर आधी पिंडलियों तक भूरी-भूरी धूल जम गई थी । धूल भरी पिंडलियों के छोटे-छोटे बाल अजीब से लगते थे । मालूम होता था, वह बहुत दूर से पैदल आया है । पाँव-हाथ धोने का अवसर भी नहीं मिला । कुछ क्षण पहले एकाएक डाक गाड़ी के मिलने से उसे जो प्रसन्नता-मिश्रित आश्चर्य हुआ था, उसका कोई चिन्ह अब शेष नहीं था ।

“बिना टिकट लिये कहाँ घुसे आ रहे हो ?”

एक व्यक्ति ने ऊँचे स्वर में ललकारा । इस ऊँची आवाज़ में इस बात का संकेत नहीं था कि बोलने वाला व्यक्ति चढ़ने नहीं देगा, या चढ़ने पर जबरदस्ती उतार देगा । उसके प्रश्न से केवल यह ध्वनि आ रही थी—तुम चल सकोगे हो किन्तु हमारी पद-मर्यादा का ध्यान रखना । हम भी कुछ हैं इतना जान गये तो तुम्हारे चलने से हमें कोई आपत्ति नहीं होगी ।

बोलने वाले की बड़ी-बड़ी सुडौल मूँछें, गोरा और भरा मुँह, ऊँचा ललाट पर लुप्त प्रायः अस्पष्ट-सी भौंहें किसी व्यक्ति को प्रभावित करने के लिए पर्याप्त थीं । खाकी ड्रेस में गोरा रंग और रक्त की लालिमा निखर कर आकर्षक

लगता था। उस व्यक्ति के कंधे पर पीतल के दो-तीन तारों और राजमुकुट के चिन्ह को देखकर नवागन्तुक ने मन ही मन प्रश्न किया—इतना बड़ा पुलिस का अधिकारी तीसरे दर्जे के डिब्बे में सफर क्यों कर रहा है ?

“माई-बाप ! आपकी दया चाहता हूँ। इस स्टेशन से पाँच मील दूर मेरी बहन की सुसराल है। बहुत सख्त बीमार है। खबर पाकर मैं यहाँ आया। आज उसे अठवाँसा लड़का हुआ। लड़का चलता बना। बहन सबेरे से ही अचेत आँधे मुँह पड़ी है। गाँव की दाई कहती थी, बहन का बचना कठिन है। कहती थी सोंठ, अजवायन और पीपल का काढ़ा दिया जाय तो शायद बहन बच सके। बीस झोंपड़ी का गाँव, ये मामूली चीजें भी नहीं मिल सकीं। पहले से मालूम होता तो ले आता। अब लेने जा रहा हूँ। बहन का पुण्य उदय हुआ इसलिए आज डाक गाड़ी भी यहाँ रुक गयी। पैसेन्जर में जाता तो रात तक न लौट सकता। अब दोपहर की गाड़ी से ही आ जाऊँगा। भगवान ने चाहा तो बहन अच्छी हो जायगी। आपके चरण के प्रताप से मेरी बहन बच जाय। मैं आपको तकलीफ नहीं होने दूँगा, खड़ा-खड़ा ही चला चलूँगा।

“हमने तुम्हें यह नहीं कहा कि तुम मत चलो। बड़े दुखी हो। बैठ जाओ, यहीं नीचे बैठ जाओ।”

उसकी करुण कहानी और दुखी चेहरे को देखकर पुलिस अफसर का हृदय पसीज गया। ग्रामीण अपनी चादर बिछाकर लेट गया।

“आप यह समझ लीजिए,” पुलिस अफसर ने पास बैठे एक वृद्ध महाशय को सम्बोधित किया। अपनी पिछली अधूरी बात को शुरू करने के लिए बोले—“काँग्रेस के इस आन्दोलन से हमारे नाकों दम है। न दिन में चैन न रात में नींद। कल साँझ ही अगले स्टेशन पर गुण्डों ने डाका डाला है। गाँव और स्टेशन की पुलिस चौकी जला दी गई। तीन-चार सिपाहियों की लाशें मिली हैं, कुछ का पता नहीं है। पटवारी का दफ्तर भी आग की भेंट हो गया। जो कुछ मिला गुण्डे उसे लेकर नौ दो ग्यारह हो गये। लोग इसे देश-भक्ति कहें, मैं तो डाका कहता हूँ, डाका ! इन कामों से देश का क्या भला होगा ? तुम पर हुकूमत करते हैं अंग्रेज। अंग्रेजों से तो बस नहीं चलता और लगे अपने

ही देश-भाइयों पर क्रोध निकालने । पुलिस के सिपाही भी इसी देश के हैं, देश-वासियों के मारने से देश का भला होगा ?”

अफसर की आँखों में सुर्खी आ गई थी और साँस कुछ जोर से चलने लगी थी ।

नवागन्तुक ग्रामीण इन बातों को सुन-सुन कर मन ही मन उद्विग्न हो रहा था । मन में आया, अच्छा मुँह-तोड़ उत्तर दिया जाय; लेकिन वह अपनी स्थिति को जानता था । विवश हो उसे अपने मुँह की बात निगल जानी पड़ी । उसने अपने मन में ही उत्तर दुहरा कर सन्तोष माना—‘जब तुम लोग अपने देशवासियों को गुलाम रखने के लिए चौबीसों घण्टे कमर कसे रहते हो और अपने देश-भाइयों की आजादी छीनने के लिए आज तुम्हारी राइफिलें क्षण भर के लिए भी नहीं ठण्डी होना चाहतीं तब हम लोग तुम्हें अपना देशवासी और भाई समझने की भूल कब तक करते रहेंगे ? हर आदमी से टैक्स वसूल करने के लिए अँग्रेज तो आता नहीं, और न अँग्रेज ही उन सब लोगों को जेल भेजता है, जो जनता की सेवा करने के कारण तुम्हारी आँखों का काँटा बन जाते हैं । अँग्रेजी राज को रस पहुँचाने वाली जड़ें तुम्हीं हो । पत्तों को तोड़ने से क्या लाभ ? जड़ें काट डाली जायँ तो पेड़ अपने आप सूख जायगा ।’

अफसर बिना रुके कहता जा रहा था—

“रात की गाड़ी से वहाँ पुलिस पहुँच गई है । मैं अब जा रहा हूँ । बहुत सारा काम हो चुका होगा । देखिए हम लोग कैसी खबर लेते हैं । चार की जगह चालीस जानें जायँगी और दस की जगह सौ रुपये रिआया से ही वसूल होंगे । एक के दस, सीधा हिसाब है ।”

“जी हाँ, हिसाब तो सीधा है” उस वृद्ध ने स्वीकृति दी ।

आगन्तुक मन ही मन बड़बड़ाया—

“हाँ हिसाब तो सीधा है, किन्तु हिसाब सीधा होने से ही सौदा सस्ता नहीं पड़ता ।”

अफसर की बातें उसे सहन नहीं हो रही थीं और इससे भी असह्य थी स्वयं उसकी अपनी विवशता । उसने अपना ध्यान दूसरी तरफ लगाने के लिए

दरवाजे की खिड़की से बाहर नज़र डाली। छोटे-बड़े वृक्ष सरपट दौड़ रहे थे। आँखें किसी पर टिक नहीं रही थीं। एक के बाद एक दृश्य घूमने लगा। अमावास्या की रात, घनघोर अँधेरा। घटाटोप बादल और इस सन्नाटे में धू-धू करता हुआ जलने वाला स्टेशन। रह-रहकर लोहे का चटकना। लप-लपाती हुई लपटें, किन्तु फिर भी उस सन्नाटे में निस्तब्धता से आग इतनी मरलता से लगातार जल रही थी जैसे वर्ष की बड़ी चट्टान अपने आप पिघल कर चुपचाप छोटी हो जा रही हो। कुछ दूर उस प्रकाश से आलोकित सिपाहियों की खून से लथपथ लाशें ! एक लाश की अधखुली आँखें और फटा हुआ मुँह और इस दृश्य से उसका मस्तिष्क विषाद से भर गया। उसने अपनी नज़र फेर ली। देखा, पुलिस-अफसर उतरने की तैयारी कर रहा है। सामान एक जगह रख कर उसने अपनी पिस्तौल हाथ में ली। खोल कर देखा नौ कारतूस भरे थे। एक बार पिस्तौल को हाथ से तोल कर वह तन कर खड़ा हो गया। जैसे उसे अब किसी का डर नहीं।

स्टेशन आया। जलकर खाक हो चुका था। यात्री स्टेशन को देखने के लिए उतर पड़े, किन्तु पुलिस न प्लेटफार्मे घेर रखा था। यात्री या नागरिक नाम को नहीं थे। पचासों पुलिस के सिपाही कन्धों पर संगीन जड़ी बन्दूकें रखे दायें से बाँये चक्कर लगा रहे थे। पुलिस अफसर उतरा तो सब ने तन कर सलामी दी। वातावरण में गजब का आतंक छाया था, यदि पत्ता भी खड़े-खड़ाता तो उसकी ध्वनि कान में आ जाती।

नवागन्तुक ग्रामीण ने अपनी चादर लपेट ली। वह सोचने लगा, यही तुम्हारी सरकार है। मुश्किल से दस आदमियों ने यह सारा काण्ड किया और अब तुम अपने सैकड़ों सिपाही भेजकर जनता को बताना चाहते हो अपनी ताकत। वंचारी जनता तुम्हारी ताकत से कब इन्कार करती थी ? फिर यह सब क्यों ? वह गाड़ी के फर्श पर लेट गया। आँखें बन्द कर, सोने का प्रयत्न करने लगा।

उसकी चेतना में आ खड़ा हुआ एक सात-आठ साल का लड़का। लड़के के आगे थी एक चार-पाँच साल की लड़की। एक बड़ा बैंगला, बैंगले का लम्बा-चौड़ा आँगन और सामने फैला हुआ हरा-भरा बगीचा। लड़की आगे-आगे

एक खाम धरे में घूम रही थी। घूमते समय वह कह रही थी, “छूओ जी, छूओ जी।” लड़का उसके पीछे-पीछे चलकर उसी को दुहराते हुए चक्कर लगा रहा है। दोनों में से कोई किसी को छूता नहीं किन्तु छूने के लिए आवाहन दोनों कर रहे हैं। दोनों का अन्तर मिटता नहीं था, उसी फासले से लगभग आधा घण्टा तक दोनों चक्कर काटते रहे। अन्त में लड़का आगे बढ़ा किन्तु लड़की कतरा कर पीछे मुड़ी और आगे बढ़ गई। लड़का झुंझला कर चल दिया। लड़की ने कहा, “अजी, कहाँ जा रहे हो? बस थक गये। जरा छूकर? दिखाओ न!”

“हम नहीं छुएँगे। तुम धोखा देती हो, धोखेवाज से कौन खेले?”

“पकड़ न सके तो गाली देने लगे। धोखेवाज किसे कहते हैं जी? फिर कभी न कहना। हिम्मत हो तो आओ।”

×

×

×

“तुम इतनी शर्मीली क्यों हो गई हो? कल तक मेरे साथ खेलती थी, आज मुझसे इतनी शर्म करने लगी। तुम कितनी बदल गई हो! कितनी बड़ी हो गई हो?”

वह नन्हा बच्चा अब कॉलेज का ग्रेजुएट हो कर घर लौटा। दो-तीन वर्ष बाद घर लौट कर उसने देखा उसके साथ बचपन में खेलनेवाली लड़की का रूप ही बदल गया है। दो वर्ष में इतना परिवर्तन! लड़की न केवल शरीर से बदल चुकी थी बल्कि उसका मन भी पूरी तरह बदल चुका था। उसकी शरास्ती और चंचल आँखों की पुतलियाँ जैसे किसी ने स्थिर कर दी थीं और उसकी वह उछल-कूद, हिरन की तरह चौकड़ियाँ भरना! अपनी किलकारी से घर भर को गुँजानेवाली वह लड़की अब कहाँ चली गई? ओह, समय भी कितना बड़ा जादूगर है, उसने अपने स्पर्श से, अपना जादू का हाथ लगाकर लड़की में कितना परिवर्तन कर दिया है!

“मैं बड़ी हो गई और आप जैसे उतने ही हैं! स्वयं अपना मुँह देखिए। मैं इतनी तो नहीं बदली हूँ कि आपको इतना आश्चर्य करना पड़े!”

“मैं यदि आश्चर्य न भी करूँ तो क्या तुम पहलेवाली बन जाओगी?”

पहले मेरे आने पर तुम इस तरह धीरे-धीरे कदम रखकर नीची गरदन किये आती थी ? आज मालूम होता है तुम्हारे पाँव पृथ्वी से चिपके जाते हैं और गरदन उठाये नहीं उठती ! और तुम्हारा रूप ! कहाँ से पा लिया इतना रूप ? मैं छोड़कर गया था एक अबोध बालिका और इस समय मेरे सामने खड़ी है अप्सरा ! यह रम्भा है या उर्वशी !”

“देखिए यदि ऐसी बातें करेंगे तो मैं चली जाऊँगी और कभी आऊँगी नहीं ! बुलाओ तब भी नहीं । कॉलेज में क्या यही पढ़ा है ? उर्वशी या रम्भा की कहानियाँ पढ़ते रहे ! मैं न रम्भा हूँ न उर्वशी ! श्रीमान जी जागते हुए भी स्वप्न देख रहे हो, जरा आँखें धोकर आइए ।”

“नहीं, आँखें धोने की जरूरत नहीं । मैं इस स्वप्न को देखते ही रहना चाहता हूँ । जागने से क्या मिलेगा ? क्या जागरण इस स्वप्न से अधिक सुन्दर हो सकता है ? यदि वश चले और मैं भगवान से कोई वर माँग सकूँ तो यह वर माँगूँगा कि हे भगवान, मेरे इस स्वप्न को शाश्वत बना दे । आँख खुलने पर यह स्वप्न ओझल न हो जाय ।”

“भगवान तक जाने की क्या आवश्यकता है, यह वरदान तो आपको किसी दूसरे से भी मिल जायगा । इसके लिए आपको किसी मन्दिर में दीपक नहीं जोड़ना पड़ेगा और न एकादशी का व्रत करके अपने शरीर को सुखाना होगा ! लेकिन एक बात ध्यान में रखिए, स्वप्न स्वप्न ही होता है और जागरण जागरण ही ! जागरण स्थायी है और स्वप्न अस्थायी ! स्वप्न अनेक आयेंगे और आप को लुभायेंगे भी ! एक ही स्वप्न देखते-देखते जब आप तंग हो जायेंगे उस समय आप उस भगवान से यही कहेंगे—हे भगवान, तुमने यह कैसा वर दिया ! इस स्वप्न से तंग आ गया हूँ । उस समय यदि ईश्वर आपकी प्रार्थना स्वीकार किये बिना अपने वरदान की लाज बचाने की चेष्टा करें तो श्रीमान जी को उन्हें दोष देने का कारण न मिलेगा ।”

“न मिले । यदि इस पृथ्वी तल पर ही कोई इस वरदान के देने की सामर्थ्य रखता है तो मुझे भगवान तक जाने की आवश्यकता ही क्यों पड़ेगी ? यदि तुम

जानती हो तो उस देवता का नाम बताने की कृपा करो और उसकी पूजा-प्रसाद के लिए क्या-क्या करना पड़ेगा, इसकी शास्त्रीय विधि भी बता दो !”

“समय आने पर सारी विधि बता दी जायेगी, लेकिन एक बात कहे देती हूँ, जिसने आपको पास किया है, उसमें कुछ ज्यादा बुद्धि नहीं थी। लो में चली !”

×

×

×

गाड़ी अपनी तेज चाल से मंजिल तय कर रही थी। पहिये अपने निश्चित ताल-स्वर में थिरक रहे थे। वायु के झोंके आ रहे थे। ग्रामीण ने बाहर दृष्टि डाली। सपाट मैदान था, ज्वार-बाजरे की फसल कट चुकी थी, खेतों में छोटे-छोटे डंठल खड़े थे। दूर-दूर तक जाकर भी दृष्टि को कुछ मिलता नहीं था, इसलिए लौट आती थी। एक-एक कर के तार के खम्भे भागे जा रहे थे, खम्भों के तार कभी फैलते दिखायी देते और कभी सिकुड़ते। एक के बाद दूसरी घटना सामने आ रही थी—

लड़की की आँखों के आँसू सूख चुके थे, किन्तु अभी वह रह-रह कर सिस-कियाँ भर रही थी। बोलने का प्रयत्न करती थी किन्तु हृदय में शोक का वेग इतनी जोर से उठता था कि मुँह से एक शब्द भी नहीं निकलता था। आधा घण्टा तक चुप रहने के बाद लड़की ने सिर ऊपर उठाया और उस युवक का हाथ पकड़कर उसने कहा—“नहीं, आज नहीं जा सकेंगे। अपने जीवित रहते मैं आपको जानने न दूँगी। यदि मैं संसार में न रहूँ तो फिर आप अपनी इच्छा के अनुसार कार्य करने में स्वतन्त्र रहेंगे। मेरी प्रार्थना, प्रार्थना नहीं आज्ञा, आपको स्वीकार करनी ही होगी। आप इस तरह अपना बलिदान नहीं कर सकते। जो कुछ बलिदान करना पड़ेगा मैं करूँगी। यदि मैं न रहूँ तो संसार का क्या बिगड़ जायगा। आप जीवित रहेंगे तो बहुत कुछ कार्य कर सकेंगे। यदि मैं न रहूँगी तो कोई न कोई नारी मेरे रिक्त स्थान को पूरा कर लेगी, किन्तु आपका अभाव क्या किसी से पूरा किया जा सकेगा ?”

“नहीं, अब मेरा जीवन निरर्थक हो चुका है। इसकी सार्थकता इसी में है कि किसी पुण्य कार्य में, देश के कार्य में, इसका विनियोग कर दूँ। तुम्हारी

शक्ति पर मुझे विश्वास है, इसलिए मैं निश्चिन्तता से अपना उद्देश्य पूरा कर सकूंगा ।”

“आप फिर देश के लिए वलिदान की बात करने लगे । यदि आप सच्ची और वास्तविक उत्सर्ग की भावना से वलि-पथ पर जाते तो आपके उस कार्य से मुझे जितना हर्ष होता उतना किसी दूसरे को नहीं, किन्तु यह गौरव मेरे भाग्य में नहीं है । उस समय मैं स्वयं आपको विदा करती ! पर बात ऐसी नहीं है । इस समय आपका भविष्य पर से विश्वास उठ गया है । भविष्य में कोई अवलम्बन न देखकर आप अपनी निरर्थकता अनुभव कर रहे हैं । यदि जीवित रहेंगे तो मैं समझती हूँ आपको भूतकाल की स्मृतियाँ आश्रय देंगी और उनके सहारे आप भविष्य का निर्माण कर सकेंगे । लेकिन इस तरह भविष्य से निराश होकर अपने आपको समाप्त करने की भावना में कायरता है । आपकी इस दुर्बलता से मुझे मर्मान्तक वेदना होती है । आप इसे देश सेवा का नाम दें या वलिदान का । मैं इसे आत्म-हत्या के अतिरिक्त कोई दूसरा नाम न दूँगी । आत्म-हत्या के साथ-साथ इसमें महान् स्वार्थ है । केवल अपनी शान्ति और अपने दुःख से छुटकारे की उत्कट इच्छा ही आपको अग्रसर कर रही है । ऐसे वलिदानों से कभी किसी देश का भला नहीं हुआ और साथ ही जब भ्रम का परदा दूर होगा उस समय आय स्वयं अपने कार्य पर पश्चात्ताप करेंगे । उस पश्चात्ताप में मेरा अंश कितना रहेगा, मैं जानती हूँ । तब क्या आपकी इच्छा है, मैं दूसरे लोक में जाकर भी, यदि वैसे कोई लोक वास्तव में है—पश्चात्ताप और वेदना के बोझ से दबी रहूँ ? मेरे लिए, मेरी प्रसन्नता के लिए आपको प्रतिज्ञा करनी होगी, आपको जीवित रहना है और जीवन प्राप्ति के लिए शक्ति भर प्रयत्न करना है । पलायन की भावना मन से निकालिए और जो कुछ आता है उसका सामना करने के लिए अपने मन में सामर्थ्य एकत्रित कीजिए ।”

“मैं इस पर विचार करके कल उत्तर दूँगा ।”

दूसरे दिन युवक जब उस लड़की के घर गया तब तक सन्ध्या हो गई थी और अँधेरा गहरा हो चुका था । चिड़ियों की चीँ-चहाट बन्द हो गई थी ।

युवक ने उदासी और विषाद के साथ धड़कते हृदय से बंगले के बाग में प्रवेश किया ।
बृक्षों के झुरमुट से उसे धीमे स्वर में सुनाई दिया—

“बेटी, जो कुछ होना था हो गया, अब मेरी बात मान जा, कोई नहीं जानेगा ।”

युवक के कान खड़े हो गये ।

“नहीं माँ, यह मुझसे नहीं होगा । मैंने तुम्हारी किसी बात का आज तक उत्तर नहीं दिया, मैं तुम्हारी बात को टालना भी नहीं चाहती, लेकिन न जाने क्यों यह मुझसे नहीं होगा । तुम कहो तो अभी पत्थर बाँध कर अपने घर की बाड़ी में कूद जाऊँ या तुम बाज़ार से अफीम मँगवा दो, मैं खाकर सो जाऊँगी । लेकिन, हाथ जोड़ कर मैं तुमसे प्रार्थना करती हूँ, इस बात के लिए जोर मत दो माँ । मेरे लिए उमसे बढ़कर बुरी बात कोई नहीं होगी । बस इससे बचने का एक ही रास्ता है, मुझे अफीम मँगवा दो, तुम्हें और कुछ नहीं करना पड़ेगा । लेकिन इस रास्ते पर चलने के लिए मत कहो ।”

“तू क्या कह रही है !” माँ गरज उठी—“तुझे इसका भी ध्यान है तूने क्या कर डाला है ? बंश पर कालिख का दाग लगा दिया । अगर मैं तेरे ये चरित्र जानती तो पैदा होते ही गला घोटकर उफ तक न करती !”

“तो उम समय की भूल को अब गला घोट कर ठीक कर सकती हो न माँ ।”

“हाँ, ठीक तो कर सकती हूँ, लेकिन तेरी जैसी राक्षसी का हृदय जो मुझ में नहीं है ! अब वह भूल तेरा गला घोटकर नहीं अपना गला घोटकर ठीक हो सकती है ।”

“नहीं माँ, मैं ऐसा नहीं होने दूँगी । तुम्हारे ऐसा करने से पहले ही मैं तुम्हारी भूल सुधार दूँगी । तुम्हें यह सब नहीं करना पड़ेगा ।”

“नहीं करना पड़ेगा तो फिर मेरा कहा क्यों नहीं करती ।” अबकी बार माँ के स्वर में कम्पन था और गीले कण्ठ के कारण स्वर भी बोझिल हो गया था—
“बेटी तू नहीं जानती मैं तुझे कितना प्यार करती हूँ । तेरे भाई-भावज तुझसे कितना स्नेह करते हैं । मनुष्य से भूल हो जाती है, बड़ों-बड़ों से भूल हुई है । मान लो तुमसे भी भूल हो गई, तो क्या मैं तुझे छोड़ दूँगी ? बच्चा कीचड़ में

भर जाता है तो माँ ही उसे धोकर साफ करती है न ? मैं तुझे निष्कलंक कर दूँगी । तुझे लोक-परलोक की चिन्ता छोड़कर मेरी बात माननी चाहिए । माँ हूँ तो, बाप हूँ तो मैं ही हूँ । कुछ भी नहीं बिगड़ा है, भूल हो गई सो हो गई ।”

“मैं तुम्हारी सब बातें मानती हूँ माँ, लेकिन यही बात नहीं मानती कि मुझसे भूल हुई है । अगर भूल होती तो मैं स्वीकार कर लेती । उस भूल के लिए मुझे जो प्रायश्चित्त करना होता खुशी-खुशी करती । तुम मुझसे सब बातें जानना चाहती हो और नाम भी जानना चाहती हो । इस सब से क्या अर्थ निकलेगा ? सब कुछ व्यर्थ । मैंने जो कुछ पढ़ा है, जो मैंने सुना है सब के आधार पर मैं इसी बात पर पहुँची हूँ कि इस जगत में मेरे लिए अब कोई स्थान नहीं है । माँ, बस एक बार मैं अपनी मर्यादा को तोड़कर तुम से कहना चाहती हूँ, इसलिए कि शायद उस बात को कहने के लिए मुझमें फिर शक्ति न रहे । तुम्हें यह बता दूँ कि मुझसे कोई भूल नहीं हुई । हम दोनों में स्नेह था । पक्का प्रेम था । बरसों के बाद भी किसी दिन मैंने यह नहीं जाना कि उस स्नेह में कहीं सन्देह का लेश है । मेरा दृढ़ विश्वास है कि हमारा प्रेम इस समय भी पहले से अधिक उज्ज्वल और ध्रुव है । और मैं समझती हूँ प्रेम पाप नहीं है । प्रेम पुण्य है और पवित्र है । सांसारिक व्यक्ति यदि उसे उसके पवित्र रूप को न देख सके तो यह प्रेम का दोष नहीं । मैं जानती हूँ कि किसी समय मेरे मन की इस पवित्रता का स्थान वासना ने ग्रहण नहीं किया । जो एक स्वाभाविक और सरल आत्माओं का सम्बन्ध है, उसमें किसी प्रकार की भूल की सम्भावना नहीं । यदि कोई कहे कि मुझसे भूल हुई है तो मैं स्वीकार नहीं करूँगी । भूलना या याद रखना यह इस मार्ग में है ही नहीं । हाँ, संसार के नेत्रों में उसकी पवित्रता नहीं, कुछ और ही दिखाई देता है । संसार को भी हमें मानना है । इसी लिए अपने कार्य के लिए मुझ प्राणों का मूल्य चुकाना पड़े तो मैं इससे पीछे नहीं हटूँगी, समाज को इसका पूरा-पूरा मूल्य चुका दूँगी । किन्तु इस संसार से जाते समय और यहाँ रहते समय भी मैं अपने हृदय पर यह बोझ नहीं रख सकती कि मैंने एक कार्य किया और उस कार्य की अच्छाईयाँ

और आनन्द का उपभोग मैंने किया और जिस समय उसका मूल्य चुकाने का समय आया उस समय मैं पीछे हट गयी । नहीं माँ, यह नहीं होगा । मैंने जो कुछ किया है अच्छा किया है और अच्छाई के लिए जो देना पड़ेगा मैं दूँगी । तुम्हें कोई पाप नहीं करना पड़ेगा । माँ, आज मैंने बहुत कह डाला । क्या किसी ब्रेटी ने अब तक अपनी माँ से ऐसा कहा है ? इसके लिए मुझे क्षमा कर देना माँ, यही मेरी प्रार्थना है ।”

युवक ठहर न सका । आगे की बात सुनने की लिए वह वहाँ रुक न सका !

×

×

×

गाड़ी कुछ धीमी हो गई थी । ग्रामीण का हृदय धड़क रहा था । वह पसीने से तर हो गया था । गाड़ी ठहर रही थी । ग्रामीण ने अपनी लाठी उठाई और दरवाजा खोला । दूसरे यात्री ने पूछा—“क्या यहीं उतरना है ?”

“हाँ, मेरी यात्रा यहीं समाप्त हो गई ।”

और वह नीचे उतर गया.....

— × —

खून और केशर

“तुम्हारी आँखों में आँसू ! माँ, अपनी मुस्कान से इस बिदाई को मंगल-मय बना दो !”

बिदाई शब्द उच्चारण करते-करते उसका कण्ठ भर आया और उसकी आँखों से नन्हे-नन्हे मोती ढुलक गये ।

माँ, जो लाख कोशिश करने पर भी अपने आँसू नहीं रोक सकी थी, बेटे के आँसू देखकर सहम गई । उसके ओठों पर हँसी की रेखा दौड़ गई, यह रहस्य उसके अन्तःस्थल के रुदन को अदृश्य रखने में सफल नहीं हुआ ।”

इसी समय स्टेशन पर लगी हुई घण्टी तार में प्रवाहित होनेवाली बिजली से टकराकर अपने आप वेग से बज उठी । गाड़ी अगले स्टेशन से छूट चुकी थी ।

घण्टी के वेग के साथ मस्तिष्क में एक, दो, तीन, सैकड़ों विचार घूम गये । बिदा लेनेवाले यात्री को लगा, उसे बहुत कुछ कहना है ; बिदा देने वाले को लगा, उसे बहुत कुछ गुनना है ; किन्तु उनके पास समय नहीं है । केवल तीस मिनट बाद वे एक दूसरे से दूर हो जायेंगे—दूर, बहुत दूर, दस मील, सौ मील, हजार मील ।

“बेटा ! तुम यहाँ से सीधा काश्मीर जाओगे ?”

माँ ने बात चलाने के लिए प्रश्न किया, वैसे हृदय में स्तब्धता थी, कुछ सूझ नहीं रहा था ।

“मालूम तो यही होता है : हमारी सेना चली गई । तार आया है तुम भी दूसरी गाड़ी से चल दो ।”

“काश्मीर यहाँ से कितनी दूर होगा, बेटा ?”

“बहुत दूर नहीं, माँ ! यही दिल्ली के पास । यहाँ से दिल्ली, दिल्ली से काश्मीर !”

“दिल्ली तो दूर नहीं है । अपने मदुरा के कितने ही लोग वहाँ नौकर हैं । यहीं कहीं होगी ?”

“हाँ, माँ !”

‘हाँ, याद आई ! वही काश्मीर जहाँ से केशर आती है । तेरे दादा ने सारे तीर्थों की पैदल यात्रा की थी । वे अमरनाथ के दर्शन करने काश्मीर गये थे । लौटते समय केशर लाये, कितनी सुगन्धित थी वह केशर ! उसका रंग कितना अच्छा था । वह हरी-हरी थी, लेकिन उसका रंग सोने जैसा उतरता था । आज जो केशर आती है, उसका रंग गहरा होता है, लेकिन उससे कितना फीका रंग उतरता है !”

“माँ ! इस केशर से देवार्चन करना पाप है ! यह असली केशर नहीं है । मामूली घास के फूलों पर खून की ललाई चढ़ाई जाती है । इस केशर में अशुद्धता होती है । देवता इसे स्वीकार नहीं करते ।”

“विष्णु-विष्णु !” प्रायश्चित्त के स्वर में बुढ़िया ने कहा । उसके गौर मस्तक पर पसीन की बूँदें झलक आई थीं । प्रातःकालीन देवार्चन का केशर-चन्दन इस पसीने में डूब कर अपना सुनहला रंग खो चुका था । अपनी रेशम की साड़ी से पसीना पोंछते हुए उसने कहा—“बेटा, आजकल किसी पर विश्वास नहीं किया जा सकता ।” बुढ़िया ने आँखें बन्द कर लीं और हाथ जोड़कर अदृश्य के निकट प्रार्थना की—“देव, कलियुग में धर्म-कर्म नहीं रहा । तुम अन्तर्यामी हो, मैं कल से तुम्हें ऐसी केशर नहीं चढ़ाऊँगी ।”

“माँ, तुम इतनी घोर प्रतिज्ञा क्यों करती हो ? मैं जल्दी ही काश्मीर विजय करके लौटूँगा । उस समय तुम्हारी पूजा के लिए मन भर शुद्ध केशर लाऊँगा । उमर भर देवता की पूजा करना ।”

“हाँ, यह तो बहुत अच्छा होगा ! जरूर लाना, भूलना मत ।” और फिर उसने श्रद्धा से मस्तक झुकाकर अदृश्य से निवेदन किया—“महाविष्णु, तुम सुनना । तुम मेरे लाल की रक्षा करना । इसके लौटते ही मैं मीनाक्षी के समस्त देवताओं को केशर जल में स्नान कराऊँगी ।”

इसी समय भक्-भक् करता हुआ रेल का इंजन उन लोगों के निकट से गुजरा । गाड़ी के इस शोर में उसकी यह प्रार्थना विलीन हो गई और अदृश्य उस प्रार्थना को सुन नहीं सका ।

“अरे, मुझ याद नहीं रहा । मन्दिर के पन्तलू ने मुझे यह यंत्र लिख दिया

है। मैं बूढ़ी हो गई, याद ही नहीं रहता। प्रातःकाल के मांगल्य के पुष्प हैं। देव तेरी रक्षा करें ! ला, मैं तेरी भुजा में बाँध देती हूँ।”

किन्तु बुढ़िया तत्काल वह यन्त्र और मांगल्य भुजा पर नहीं बाँध सकी। आकृति पर झलकने वाली हृदय की वेदना जैसे हाथ की अँगुलियों को पकड़ बैठी थी।

गाड़ी छूट चुकी थी। बुढ़िया दो क्षण चुपचाप उसकी तरफ खड़ी देखती रही, फिर वह संगी-साथियों के पीछ चल दी।

राज केशव कितना सुन्दर लग रहा था। उसने पहली बार फौजी वेश पहना था। गोरा रंग, खांकी कपड़ों में निखरकर कितना आकर्षक लग रहा था ! फिर कन्धे पर लगे हुए दो-तीन पीतल के तारे स्टेशन की रोशनी में दमक कर मुख की कान्ति को बढ़ा रहे थे। फौजी कोट में उसकी छाती उभरी हुई थी, बुढ़िया की आँख के आगे वह रूप जैसे स्थिर हो गया था। फिर अपनी जाति की तीन-चार लड़कियाँ आँख के आगे से निकल गईं। रेशम की वे साड़ियाँ, उनका हल्का-हल्का गुलाबी रंग ! टोड़ी और गले पर लगा हुआ केशर का पीत रंग ! कमर पर झूलती हुई काली-काली वेणियाँ, जिन पर रंग-विरंग पुष्पों के गुच्छे लटक रहे थे और वेणी के सिरे पर गुंथा था केवड़े का पत्ता। लेकिन माँ ने सोचा फौजी वेश और कलापूर्ण आकृतियों में कोई सामंजस्य नहीं है।

×

×

×

×

बैशाख के अन्त में यहाँ काश्मीर ने जैसे नींद से अंगड़ाई ली है। बर्फ की मोटी चादर में लिपटी हुई भूमि जैसे ठिठुरकर सिकुड़ गई थी, किन्तु अब उसने अपनी वह चादर उतारकर नदियों को सौंप दी और उसका कण-कण विकसित हो उठा। विश्व में दूसरे प्रदेश सूरज की भयानक गर्मी से झुलसे जा रहे हैं, अब काश्मीर में वसन्त का आगमन हो रहा है। लड़ाई के मैदान सदियों में सुनसान पड़े रहे, कभी-कभी तोपों की आवाज इस सन्नाटे को तोड़ देती थी। छः महीने तक इस ठिठुरन में देश की रक्षा करनेवाले वीर वसन्त की शोभा देखने श्रीनगर आ गये थे और उनका स्थान नये सैनिकों ने ले लिया

था। केशव का दल भी श्रीनगर लौट आया था। सरहद के लम्बे-तगड़े पठान जिनके प्रदेश में न वसन्त होती है न बरसात, बारहों महीने सूखा और कड़ाके की सर्दी, अपनी बन्दूकों तान इस प्रदेश पर अधिकार करना चाहते हैं, किन्तु जैसे श्रीनगर और काश्मीर की घाटी को उन हिंसकों का कोई डर नहीं। वह अपने पूर्ण यौवन में किलकार उठी है। झेलम ने अपना मधुर संगीत छोड़ दिया है। चीनार के ऊँचे-ऊँचे वृक्ष निर्भय हो हवा के झोंकों से अठखेलियाँ करने लगे हैं और गुलाब के फूलों ने गुलाब के पत्तों को ढँक लिया है। प्रकृति निर्भय है। उसे उन षड्यन्त्रों का आभास तक नहीं जो इस भूमि के आसपास रचे जा रहे हैं।

इस भूमि को भय हो ही क्यों? जब मातृभूमि की रक्षा के लिए उसके मुपुत्रों ने अपनी बन्दूकों सम्हाल ली हैं।

काश्मीर के सुन्दर, गोरे-गोरे नौजवान और सेव के रंग को लजानेवाली कोमल मुकुमारियों ने बन्दूक उठा ली है और वे सब भारतीय सैनिकों के कदम से कदम मिलाकर अपने देश की रक्षा के लिए समरांगण में पहुँच गये हैं।

“इन छः महीनों में श्रीनगर जैसे बदल गया है। छः मास पहले इस घाटी में कितना भय था। पूरा प्रदेश उजाड़ हो चुका था, किन्तु छः महीनों में पूरा दृश्य बदल गया है। लोग कितने खुश हैं, घर-घर में उत्सव मनाये जा रहे हैं।”

केशव ने अपने काश्मीरी साथी रहीम से कहा। रहीम काश्मीरी स्वयं-सेवकों के एक जत्थे का नायक है। केशव अब लेफ्टिनेंट से कैप्टन बन गया है। रहीम का जत्था केशव के आदेश में लड़ रहा है। रहीम ने उत्तर दिया—

“जनता की ताकत अटूट है कप्तान! राजा या डिक्टेटर समझते हैं जनता को हम हरा देंगे। लेकिन उनकी ताकत महदूद होती है। रियाया का एक आदमी मरता है तो दूसरा उसकी जगह ले लेता है और दस खर्च होते हैं तो बीस की कमाई होती है, लेकिन जनता के दुश्मन अपना नुकसान पूरा नहीं कर पाते।”

“यह तो मैं माफ देख रहा हूँ,” केशव ने कहा। उसने अपने हाथ से

कन्धों पर लगे हुए राष्ट्रध्वज की तिरंगीपट्टी को छुआ, और बोला—“रहीम, मैंने कालेज में काश्मीर के बारे में एक पुस्तक पढ़ी थी, उसमें लिखा था, ‘काश्मीर की भूमि कितनी उपजाऊ है ! उसमें कितनी ताकत है ! लकड़हारा किसी पेड़ पर प्रहार करके अपनी कुल्हाड़ी उठाता है, कि उठाते-उठाते उस पेड़ का घाव भर जाता है ।”

“बहुत खूब, बहुत खूब !” अपनी मातृभूमि की भक्ति से रहीम का मस्तक झुक गया ।

“इतना ही नहीं, रहीम,” केशव ने कहना शुरू किया—“आगे चलकर तो कल्पना की हद हो गई है । कवि ने लिखा है, काश्मीर की घाटी में लोग ऐसी कोठरी में भोजन बनाते हैं, जहाँ हवा नहीं होती । कारण देते हुए कवि ने बताया, लोग मर्गों या दूसरे परिन्दे को हलाल करके पकाते हैं लेकिन थाली में परमते ही अगर उसे उस घाटी की हवा लग जाय तो वह फिर जिन्दा होकर उड़ जाता है ।”

“बहुत खूब, कप्तान, बहुत खूब ! सचमुच हमारी हवा की यही तासीर है । इस जमीन पर कितने हमले हुए हैं, कुदरत भी हर साल बरफ बरसा कर इसे कितना तबाह कर जाती है, लेकिन फिर मौका पाते ही लगता है, जैसे वहाँ कुछ हुआ ही नहीं । इन पठानों ने हम पर कम अत्याचार नहीं किये । एक—एक कहानी सुनो तो रोमांच हो जाय । ये लोग चले हैं काश्मीर पर राज करने । तुमने सुना है, सरहदी लोग जब-जब श्रीनगर के पास पहुँचे तो उनके कंधों पर मोटे-मोटे कम्बल थे । उन्होंने यहाँ का सामान अपने कम्बलों में न बाँधकर शालों में बाँधा । उनकी नजरों में वह कम्बल ज्यादा कीमती था लेकिन जनता का घाव भर गया है । आज वह स्वस्थ होकर आक्रमणकारियों को देश से भगा रही है ।”

“सचमुच बड़ा सुन्दर प्रदेश है ।”

“आपको अच्छा लगा यह स्थान ?”

रहीम ने प्रश्न किया ।

“मुझे तो लगता है जैसे मैं अपने मलय प्रदेश में ही हूँ। वैसे ही फूलों से लदी झाड़ियाँ।”

“आपको इन दोनों प्रदेश में कोई अन्तर नहीं दिखाई देता ?”

“नहीं ! बस अन्तर इतना ही है कि हमारे यहाँ मीलों तक फैले हुए मैदान हैं और यहाँ चारों तरफ पहाड़ियाँ। हमारे यहाँ ताड़ और नारियल के ऊँचे-ऊँचे वृक्ष हैं और काश्मीर में चीनार और भोजपत्र !”

“सचमुच मुझे भी यही लगता है, जैसे दक्षिण और उत्तर के ये दोनों प्रदेश बिल्कुल एक ही हों। यहाँ पहाड़ियों की वजह से चाहे कुछ उलझन-सी पैदा हो गई हो, लेकिन यहाँ के लोगों के दिल बिल्कुल आपके मलय देश की तरह खुले और सख्त हैं।”

“मैंने यहाँ आकर अनुभव ही नहीं किया, कि मैं किसी पराये देश में आ गया हूँ। यहाँ औरतों को देखता हूँ तो लगता है जैसे मेरी माता का स्नेह उनकी आँखों से झलक रहा है। वही भाव, वही विचार। मैं जहाँ-जहाँ गया। लोगों का प्यार मिला। हम जिन पहाड़ियों में लड़ रहे थे, वहाँ दस-दस पाँच-पाँच घर के गाँव बसे हैं। जब कोई युवती उन चोटियों पर दोपहर के समय अपना ग्रामीण गीत गाने लगती तो पूरी पहाड़ी गूँज जाती। मलय के घन उपवनों में पुष्प-संचय करने वाली तरुणी के स्वर और उसके स्वर में कुछ भी तो अन्तर नहीं होता।”

“इसीलिए तो हम एक हैं कप्तान।” रहीम की आँखें उत्साह से चमकने लगीं।

“हिन्दू-मुसलमान के विरोध ने भारत के इतिहास को कलंकित कर दिया है भैया। लेकिन कश्मीर आगे आनेवाली पीढ़ियों को सन्तोष प्रदान करने के लिए सामग्री उपस्थित करेगा। भारत के अन्य भागों में दोनों सम्प्रदाय जब एक दूसरे के खून के प्यासे बने हुए थे, उस समय कश्मीर में हिन्दू मुसलमान कन्धा से कन्धा मिलाकर अपने दुश्मन का सामना कर रहे थे।”

“हाँ, कप्तान, काश्मीर को सदा इसका गौरव रहेगा। काश्मीर एक ऐसी मिसाल कायम करने जा रहा है, जिस पर आनेवाली पीढ़ियाँ खुशी मनायेंगी।”

“खून, कत्ल, गारतगिरी और वहशियाना हरकतों से ऊपर उठकर हमने इन्सानियत को महफूज रखने की कसम खाई है। जिन सिखों को देखकर पश्चिमी पंजाब में मुसलमानों का खून खौलने लगता है, वे सिख यहाँ निर्भयता से घूमते हैं। इस घाटी के किसी भी गाँव में वे चले जायँ, वहाँ उनका स्वागत होता है। मैंने देखा है, लोग उनके आगे लाल-लाल सेब और अखरोटों का ढेर लगा देते हैं।”

वसन्त बीत गया और यह टुकड़ी अपने मुहाज पर चली गई। अबकी बार सैकड़ों मील दूर चला गया था, उनका मुहाज लेकिन प्रदेश वहीं था, शीत की ताण्डव लीला वही थी। हाँ, लड़ाई वैसी नहीं थी। गोले और गोलियाँ बदली हुई और चलाने का ढंग, लड़ने का ढंग बदला हुआ था। इस बार केशव ने अपनी वीरता से लोगों को चकित कर दिया और एक दिन वह घायल होकर सैनिक रुग्णालय में पहुँच गया। घाव गहरा था। पाँव पर लगा था। खून बहुत बह चुका था।

अभी शाम नहीं हुई थी, लेकिन कुहरे का धुंध छा गया था। खन्दकों से बाहर निकलना मुश्किल था, फिर भी सैनिक गरम-गरम राख की हण्डी छाती पर लटका और उस पर गरम कोट पहन पहरें पर तैनात थे। रहीम अपने प्यारे कप्तान से मिलने गया। कप्तान ने उसे देखा, मुस्कराया, बोला—
“ड्यूटी छोड़ कर यहाँ क्यों चले आये, रहीम?”

“तुम्हारी खिदमत के लिए। मुझे महीने भर की रुखसत मिल गई है।”

“नहीं, नहीं, अब तुम्हें खिदमत करने की तकलीफ नहीं उठानी पड़ेगी। मेरा काम खत्म हुआ, अब मुझे कोई दुःख नहीं है। अच्छा हो जाऊँगा तो ठीक है, नहीं तो तुम्हें एक काम करना पड़ेगा।”

“कौन-सा?”

“चलते समय मेरी माँ ने कहा था—बेटा ! भगवान की पूजा करने के लिए तुम कश्मीर से शुद्ध केशर लाना—तुम माँ की इच्छा पूरी कर सकोगे?”

“क्यों नहीं, तुम्हारा पता मेरे पास है, लेकिन तुम इतने निराश क्यों हो रहे हो?”

“निराश नहीं, मुझे बहुत आशा आ गई है। मुझे साफ दिखाई दे रहा है, भारत माता के मस्तक का गया हुआ मुकुट उसके शीश पर फिर सुशोभित हो गया है। इस मुकुट को अब कोई दूर नहीं हटा सकेगा। मुझे बहुत आशा आ गई है रहीम ! तुम मेरी, मेरी ही नहीं मेरी माँ की भी, इच्छा पूरी करना !”

“आप निश्चित रहिए कप्तान !”

“लेकिन तुम मुसलमान हो, तुम मेरी माँ की पूजा के लिए केशर लेजाओगे ?”

“तुमने मेरी माँ की पूजा में अपना खून चढ़ाया, लाल-लाल, गरम-गरम खून ! और मैं केशर भी नहीं चढ़ा सकूँगा ?”

“देखो, केशर बिल्कुल शुद्ध हो !”

“हाँ, केशर मेरे घर पैदा होती है। मेरी औरत घर का काम-धंधा करती है और मेरी बहन झील में बजरा खेती है। उस बजरे में वह केशर भी बोती है। बजरा खेते समय वह अपनी केशर के कितने मधुर गीत गाती है ! मैं वही केशर, ताजा-ताजा केशर ले जाऊँगा तुम्हारी माँ के लिए।”

× × × ×

और एक दिन मीनाक्षी का महादेवालय घण्टों की ध्वनि से गूँज उठा। उस दिन एक मुसलमान देवाचर्न के लिए वहाँ पहुँचा था, किन्तु वह प्रमुख द्वार पर खड़ा हो गया।

माँ ने अपना आँचल कमर से बाँध लिया, उसके हाथ में पुष्पों का हार था।

“यह लो माँ, कश्मीरी शाल, देवता को अर्पित करना इसे। यह हमारे घर में बूढ़ी माँ ने तैयार किया है और यह लो केशर !”

“यह केशर शुद्ध तो है न बेटा !” माँ के स्वर में वेदना थी, किन्तु आँखों में आँसू नहीं थे।

“हाँ माँ, बिल्कुल शुद्ध !”

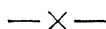
“आजकल केशर में खून का पुट दिया जाता है। इस में तो खून का पुट नहीं है ?”

“नहीं माँ,” लेकिन रहीम को लगा जैसे वह झूठ बोल रहा है। उस हरी-हरी केशर में केशव का खून झलकता दिखाई दिया !

युवतियाँ ऊँचे स्वर से आलन्द और मारण के गीत गाने लगीं और मन्दिर के घण्टे जोर से बजने लगे। बीच-बीच में शंख की ध्वनि आ रही थी।

देवता केशर जल से स्नान कर रहे थे। चन्दन चढ़ा, पुष्प चढ़े, आरती की आभा में देव का मुकुट चमकने लगा। उसने हाथ जोड़कर प्रार्थना की—
“देव, मेरे एक ही लड़का था, मैंने उसे तुम्हारे देश के चरणों में चढ़ा दिया। दूसरा कोई बालक नहीं है, होता तो उसे भी तुम्हारे चरणों पर अर्पित कर देती।”

मन्दिर के घण्टे फिर जोर-जोर से बजने लगे।



दूर देश है जाना

“भाभी, मन लगा तुम्हारा ?”

मन्ध्या समय काम से लौटने के बाद जीवन ने जमना से प्रश्न किया ।

“यहाँ मन लगाने के लिए कोई काम मिले तभी न मन लगेगा । गर्मी के ये पहाड़-से लम्बे-लम्बे दिन काटे नहीं कटते । तुम शहर की बड़ाई करते-करते थकते नहीं थे । राम-राम ! यह भी कोई जीवन है । दिन भर पौ-पौ, टन-टन, चीख-पुकार, पल भर शान्ति नहीं ।”

जीवन हाथ-पाँव धोकर इस समय तक जमना के पास ही एक बोरी पर बैठ चुका था । उसने कहा—

“यहाँ आये अभी दिन ही कितन हुए हैं ? धीरे-धीरे आदत पड़ेगी । दस-पन्द्रह दिन बीत जाने दो, स्वयं गाँव का नाम न लोगी ।”

“ओहो, यह भली कही, गाँव का नाम न लूँगी ! कहाँ हमारा गाँव और कहाँ यह गन्दा शहर । यहाँ जैसे दम घुटा जाता है । कदम-कदम पर ऊँची ऊँची दीवारें, आँखें यहाँ-वहाँ से तरसती लौट आती हैं । सड़क पर इतनी तरह के आदमियों के ये झुण्ड के झुण्ड न जाने कहाँ से आते हैं, कहाँ जाते हैं । इन सब में, मैं समझ नहीं पा रही हूँ कि मर गई हूँ, कि सो रही हूँ कि स्वप्न देख रही हूँ । गाँव के हरे-भरे खेत, लम्बे-चौड़े मैदान, दूर-दूर बसे हुए छोटे-छोटे घर, न कहीं आँखों के लिए रुकावट और न कानों पर ध्वनि का असह्य बोझ । खेत पर दिन-दिन भर अकेले काम करते समय भी लगता था—मैं भी कुछ हूँ, संसार में मेरा भी कुछ है ।”

“जमना भाभी, तुम अभी शहर का सुख जान नहीं पाई । यहाँ का-सा सुख गाँव में स्वप्न में भी नहीं मिलेगा । जरा धीरज से काम लो ।”

जीवन के स्वर में सहानुभूति थी ।

“नहीं जीवन, इन तीन-चार दिनों में इस झोंपड़ी में वैठी-ब्रंठी तज़्ज आ गई हूँ । खुली हवा में साँस लेन को कहीं जगह नहीं । जरा बाहर जाकर खड़ी होती हूँ तो यहाँ के आदमी इस तरह घूर-घूरकर देखते हैं जैसे निगल

जाना चाहते हों। गाँव के गिरे-पड़े छप्पर के आँगन में आज कल खाट पर पड़ते ही जो नींद आती तो प्रभात में चिड़ियों का चहचहाना सुनकर ही आँखें खुलतीं। मालूम तक न होता, रात कब आई और कब गई। यहाँ कुरवट बदलते-बदलते सारी रात आँखों में कटती है।”

जमना का गला रुँध आया। वह वहाँ से उठकर एक कोने में चली गई और कुछ काम करने लगी।

×

×

×

भारत की राजधानी दिल्ली से २५-३० कोस दूर अहीरों की एक छोटी-सी बस्ती थी। कठिनाई से कुल बीस घर होंगे। सारे ग्रामवासी खेती-वाड़ी पर पलते थे। किसी को यह ज्ञात न था कि उनसे थोड़ी ही दूर पर एक ऐसा स्थान है, जहाँ से चालीस करोड़ आदमियों को गुलाम रखने का चक्र चलाया जाता है, जहाँ बड़े-बड़े बंगले, बड़ी-बड़ी कोठियाँ हैं और उन बड़ी-बड़ी कोठियों तथा बंगलों में बड़े-बड़े आदमी बसते हैं।

इस छोटी-सी बस्ती का छोटा-सा किसान, बोधा, जमना का पति था। पिछले जाड़ों में दो वर्ष के लड़के के पालन-पोषण का भार जमना पर छोड़कर वह अपने दायित्व से मुक्ति पा गया। बीसवीं वर्ष-गाँठ से पहले ही जमना विधवा हो गई।

किसी अन्य पुरुष की चूड़ियाँ पहनकर अहीर-नारी वैधव्य-दोष से छुटकारा पाने में स्वतन्त्र है और स्वेच्छा से किसी की घर-गिरस्ती की गाड़ी में जुतकर अपने को अनुगृहीत भी समझ सकती है; किन्तु जमना ने पति की मृत्यु के छः मास पश्चात् भी इस वारे में कोई विचार नहीं किया। उसने अपने पति की अमिट और बहुमूल्य निशानी अपने जीवन-धन शिशु के पालन में ध्यान लगाया।

जमना पति के राज में सब तरह से सुखी थी। घर का काम भुगताकर वह दिन भर पति के साथ काम करती, खेत जोतती, निराती-काटती। न किसी का लेना था, और न किसी का देना।

पति की मृत्यु के पश्चात् उसका समूचा व्यक्तित्व सिमटकर उसी में केन्द्रित हो गया था, किन्तु गाँव-परगाँव के विवाहेच्छुक पुरुषों की प्रार्थना से

उसकी शान्ति भङ्ग हो जाती थी। घर, खेत खलिहान सर्वत्र उसके पति की स्मृतियाँ सजीव होकर उसके सामने खड़ी हो जातीं और वह घण्टों बैठी-बैठी टप-टप आँसू टपकाती रहती।

बिना सार-सँभाल किये खेत सूख गया। फसल तक घर का भण्डार—चार-पाँच मिट्टी के मटके—अनाज से खाली हो गया। एक नई समस्या उपस्थित हो गई।

और जीवन के माँ-बाप बचपन में ही बिदा हो गये थे। वह शहर चला आया और मेहनत-मजदूरी करके अपना निर्वाह करने लगा। इतनी दूर अपनी लड़की भोजने के लिए गाँव में कोई महापुरुष प्रस्तुत न था, अतः आयु का आधा भाग खो चुकने पर भी शास्त्रीय दृष्टि से बिना वामाङ्गी के जीवन का जीवन अधूरा ही रहा।

जीवन साल-छः महीने में अपने गाँव आया। उस समय गाँव भर के लोग चौपाल में जमा होते और फिर हुक्के की गड़-गड़ाहट में जीवन से अनेक प्रश्न किये जाते। वह सर्वज्ञ की भाँति गम्भीरता से प्रत्येक प्रश्न का उत्तर देता। उत्तर देते समय वह शहर की रहन-सहन और अपने ठाठ का वर्णन इतना चढ़ा-बढ़ाकर करता कि सुननेवाले दङ्ग रह जाते। उसके गठीले बदन पर सफेद-सफेद कपड़े और मुँह से निकलनेवाला सिगरेट का गुलाबी धुआँ अधिक प्रभाव डालता था।

जीवन इस बार गाँव आया तो सदा की भाँति जमना से मिलने गया। गाँव के प्रत्येक व्यक्ति में परस्पर, चाहे वह किसी जाति और वर्ग का हो, कोई-न-कोई रिश्ता रहता ही है और इस स्वयंसिद्ध रिश्ते से जमना जीवन की भाभी लगती थी। जमना जीवन को देखते ही, अपने पति की स्मृति से विह्वल होकर रोने लगी और जीवन उसे धैर्य बँधाने की चेष्टा करने लगा। उसने अन्त में कहा—“भाभी, तुम किसी बात से कष्ट न पाना। मुझे घर का आदमी समझना, मैं तुम्हारी सहायता के लिए सदैव तैयार रहूँगा।”

और बिना सोचे-विचारे जमना के मुँह से निकल गया—“तुम्हारी दिल्ली में मुझे कोई काम नहीं मिल सकेगा ?”

“क्यों नहीं ? आज-कल काम की क्या कमी है ? शहर में काम बहुत है और इस पर मनचाही मजदूरी लो ।”

×

×

×

दिल्ली पहुँचते ही जीवन जमना के लिए अच्छी किनारी की दो सफेद साड़ियाँ ले आया । साबुन, तेल और इसी तरह की दूसरी चीजें खरीदी गईं ।

जमना ने सफेद साड़ी पहिनकर, जब अपने रूखे, मैले, धूल-भरे, बरसों के तेल से चीकट बने वालों को साबुन से साफ करके खूबबूदार तेल डालकर सँवारा और टिकली लगाकर काजल की डिबिया के पीछे लगे हुए आइने में अपना मुँह देखा तो वह स्वयं आश्चर्यचकित रह गई । उसके मन में रह-रहकर प्रश्न हो रहा था—क्या यह मेरी ही परछाई है ?

वह रूपवती और मुन्दरी न होकर भी स्वस्थ थी और स्वास्थ्य में एक अद्भुत सौन्दर्य ओत-प्रोत रहता है ।

जमना बार-बार अपना मुँह देखती और आश्चर्य-मिश्रित आनन्द में तन्मय हो जाती ।

इसी समय उसका लड़का खेलकर बाहर से कोठरी में आया और दरवाजे से ही बड़े मधुर स्वर में पुकारने लगा—“अम्मी, अम्मी ।”

छलाँगें मारता और किलकारी भरता ज्योंही वह अपनी माँ के पास आया तो क्षण भर स्तब्ध खड़ा रहा और फिर उल्टे पाँवों दरवाजे की ओर दौड़ा । दरवाजे पर वह जोर-जोर से माँ-माँ चिल्लाने लगा ।

जमना दरवाजे पर आई । उसने उसे गोद में लेने के लिए ज्योंही हाथ बढ़ाये, वह दूर भाग गया और चकित नेत्रों से उसे ताकने लगा, जैसे वह कोई अपरिचित हो ।

×

×

×

पहले दिन उसमें नगर के प्रति जो उत्सुकता दिखाई दी थी, वह धीरे-धीरे विलीन हो गई ।

रात आधी से अधिक बीत चली थी, किन्तु जीवन की आँखों में नींद न थी ।

वह घर के दरवाजे से सटकर बाहर गुदड़ी पर लेटा-लेटा तारे गिन रहा था ।
उधर अन्दर जमना भी अब तक नहीं सोई थी ।

“अभी सोई नहीं, जमना भाभी ?”

“हाँ, क्या तुम्हें भी अब तक नींद नहीं आई ?”

“नहीं, मैं एक नींद ले चुका हूँ ।”

यह कहकर जीवन जमना के बिछौने पर आ बैठा । जमना भी बैठ गई ।
घर में अँधेरा छाया था, अतः दोनों एक दूसरे की आकृति को साफ-साफ नहीं
देख पाते थे ।

“तुमने अब तक मेरे लिए कोई काम नहीं देखा ?”

कुछ देर बाद निस्तब्धता भङ्ग हुई ।

“तुम काम की कोई चिन्ता न करो, भाभी ! मैं कमाकर लाऊँगा, तुम
घर बैठी खाओ । मेरे कौन बैठा है ?”

“नहीं, यह नहीं होने का । मैं यहाँ निठल्ली बैठकर खाने नहीं आई हूँ ।
वैठे-वैठे हाथ-पाँव मुन्न पड़ गये हैं । कोई काम मिले तो मन भी लगे और हाथ
पाँवों में जान भी आये । और मैं तुम पर दो-दो प्राणियों का बोझ भी नहीं डालना
चाहती ।”

“यह कैसी बातें करती हो, भाभी ! मैं क्या कोई पराया हूँ ? पराया होता
तो मैं तुम्हें लाता ही क्यों ? अगर तुम मेरा घर सँभाल लो तो मेरी जिन्दगी
सुधर जायगी ।”

जीवन चुप हो गया । जमना ने कोई उत्तर नहीं दिया , जैसे वह किसी
गहरी चिन्ता में डूब गई हो ।

कुछ देर के लिए कोठरी में सन्नाटा छा गया ।

“भाभी, क्या सोच रही हो ?” कहकर जीवन ने जमना का हाथ अपने
हाथ में लेकर जोर से दबाया—“बोलो भाभी, तैयार हो ?”

जमना के रोम-रोम में बिजली दौड़ गई । उसने कोई उत्तर नहीं दिया ।

जीवन ने उत्तर न पाकर उसकी ओर अपना बायाँ हाथ बढ़ाया ही था कि
पास में लेटा हुआ जमना का लड़का हड़बड़ाकर खड़ा हो गया । उसके मुँह से

ऐसी चीख निकली, जिससे जमना और जीवन दोनों ही हक्के-बक्के से रह गये। जमना ने उसे अपनी गोद में लिटा लिया। लड़का थर-थर काँप रहा था। उस कम्पन का स्पर्श पाकर जमना का हृदय धक-धक करने लगा। जीवन उठकर अपने बिस्तर पर आ गया।

लड़का अभी कुछ स्वस्थ हो पाया था कि जमना को प्रतीत हुआ, जैसे एक छाया उसकी ओर आ रही हो। वह छाया उसके सामने आकर खड़ी हो गई और उसके लम्बे-लम्बे हाथ लड़के की छाती पर आकर रुक गये। जमना को सुनाई दिया—“जमना, मेरी निशानी मुझे लौटा दे; मैं इसे सुरक्षित रखूँगा।”

दूसरे क्षण छाया विलीन हो गई।

जमना इतना घबरा गई थी कि उसके कण्ठ से आवाज तक न निकली। वह जीवन को पुकारना चाहती थी, किन्तु पुकार न सकी।

×

×

×

×

दूसरे दिन जमना अपने लड़के को लेकर सड़क पर काम करने चली गई। सड़क नगर से बाहर डेढ़-दो मील पर, एक ठेकेदार की ओर से बनाई जा रही थी।

उस दिन प्रातःकाल जमना की आँखें कुछ देर से खुलीं। तब तक जीवन काम पर चला गया था।

जब से जमना यहाँ आई, उसकी पहचान पड़ोस की केवल एक स्त्री से हुई। उस स्त्री का पति ठेकेदार की ओर से सड़क पर मजदूरों की देख-रेख करता था। जमना प्रातःकाल उठते ही उस पड़ोसिन के पास गई और उसने अपन पति से कहकर उसे काम दिला दिया। मजदूरों के लिए सड़क के किनारे बनी हुई स्थायी झोंपड़ियों में से उसे रहने के लिए एक झोंपड़ी मिल गई।

जमना टोकरे में पत्थर भर-भरकर कारीगरों को पकड़ा रही थी। लड़का एक-दो फेरों में उसके साथ रहा, लेकिन फिर वह थककर सड़क के एक किनारे बैठकर अपनी माँ का आना-जाना देखने लगा। जमना जब उसके पास से निकलती तो लड़के की आँखें दमकने लगतीं, वह टुकुर-टुकुर देखने लगता और हँस देता। जमना के मुँह पर भी फीकी-सी मुसकान दौड़ जाती। माँ

के आगे निकल जाने पर लड़का उदास हो जाता। जमना की छाती फटने लगती। पास पहुँचकर जमना की प्रबल इच्छा होती, वह लड़के को उठाकर अपनी छाती से लगाकर उसका मुँह चूम ले। लेकिन इस डर से कि कोई उससे कुछ कह न दे, अपना मन मारे काम करती रही। दूसरे मजदूर धीरे-धीरे काम कर रहे थे; किन्तु वह इसकी अभ्यस्त न थी। परिणाम यह हुआ कि वह दोपहर होते-न-होते थक गई।

धूप तेज हो चली थी। लड़का चढ़र बिछाकर एक वृक्ष के नीचे सो गया। जमना ने उसे चादर का एक छोर उड़ा दिया।

राम-राम करके सन्ध्या हुई। मजदूरी बँटने लगी। जमना न हाथ बढ़ाया तो मजदूरी देनवाले ने कहा—“तेरे पास चार आने हैं?”

“नहीं।”

“तो फिर तुझे बारह आने के पैसे कैसे दूँ? लो तुम चारों को तीन रुपए दिये देता हूँ। आपस में बाँट लेना।”

जमना अपने अन्य तीन साथियों के साथ जब झोपड़ियों के निकट पहुँची, उसने बड़ी विनम्रता से कहा—“भाई, मुझे पैसे की बड़ी जरूरत है। अगर तुम्हारे पास खुले पैसे हों तो दे दो। बड़ी कृपा होगी।”

“रेजगारी हमारे पास भी नहीं है। कल दिन निकले शहर में सौदा लेने जाएँगे तब पैसे मिलेंगे।”

“तो मुझे रुपया दे दो, मैं अभी सौदा लाकर तुम्हारी चवन्नी लौटाए देती हूँ।”

“बड़ी आई चवन्नी लौटानेवाली!” एक साथी ने उस पर अविश्वास की दृष्टि डालते हुए कहा—“हम कहीं भागे नहीं जा रहे हैं।”

“भागी तो मैं भी नहीं जा रही हूँ।” जमना को क्रोध आ गया। उसने क्रुद्ध स्वर में कहा—“अगर तुम मेरा चवन्नी का भरोसा नहीं करते तो मैं तुम्हारा बारह आने के लिए क्यों करूँ?”

“यहाँ तुम्हारे पाँव कौन पड़ने गया था कि तुम हमारा भरोसा करो?”

उसने बड़ी उद्विग्नता के साथ उत्तर दिया और वह अपने अन्य साथियों के साथ अपनी झोंपड़ी में चला गया ।

जमना जब अपनी कोठरी में पहुँची तो उसके रोम-रोम में ज्वाला जल रही थी । उसके हृदय को रह-रहकर यही विचार व्यथित कर रहा था—क्या मेरा मूल्य चार आना भी नहीं है, जो मुझ पर इतने के लिए भी विश्वास नहीं किया गया ।

उसने लड़के को गुदड़ी पर लिटा दिया ।

उसके हृदय में उसकी इस विवशता ने आग-सी धधका दी कि वह अपने कलेजे के टुकड़े को रोटी का एक टुकड़ा नहीं खिला सकती, छटाँक दूध नहीं पिला सकती, दिन भर खून पसीना एक करके भी वह अपना पेट नहीं भर सकी और यह कि उसके पास झोंपड़ी में मिट्टी का दिया लगाने के लिए भी दो पैसे नहीं हैं ।

आकाश में तारे छिटक गये थे । लड़का गुदड़ी पर चुपचाप लेटा रहा । उसने न रोटी माँगी न पानी माँगा । जमना ने थोड़ी देर बाद ज्योंही दुलार से उसके माथे पर हाथ रक्खा तो माथा तबे की तरह दहक रहा था । जमना चौंक गई ।

उसने बड़े करुण स्वर से कहा—“मेरे राजा बेटा, उठो, पानी पी लो । तुम्हारे लिए मैं दूध लाती हूँ, उठो बेटे ! भूखे मत सोओ ।”

किन्तु लड़के ने आँख तक न खोली । वह उसी तरह चुपचाप पड़ा रहा ।

जमना करे तो क्या करे ? उसने सोचा, जीवन के पास चली चले; किन्तु इतनी रात गये वह वहाँ कैसे जाये ? और फिर इतने जोर के बुखार में अगर लड़के को कहीं हवा लग गई तो क्या होगा !

जमना की इच्छा थी—लड़का किसी तरह आँखें खोले । वह उसे देखे । अगर वह रोन भी लगता तो भी उसे सन्तोष होता । वह रात भर उसी तरह बैठी रही ।

प्रातःकाल एक मजदूर उसे कल की मजदूरी की तीन चवन्नियाँ दे गया । उसने निश्चय किया, पहले कहीं से दूध लाकर लड़के को पिला दूँ, शायद भूख

से इसे चेत न हो रहा हो। उसके बाद कुछ सोचा जायगा। मील भर दूर से जमना अपनी छोटी-सी लुटिया में दूध भरकर लौटी। उसने झोंपड़ी में जाकर देखा, लड़के की आँखें कुछ खुली हैं और साँस धीरे-धीरे चल रही हैं। उसने हर्ष विभोर होकर हाथ जोड़कर भगवान् को धन्यवाद दिया। उसने लड़के के पाँव छुए, वे बरफ की भाँति ठण्डे पड़े थे।

लड़के के हाथ-पाँव काँपे और गर्दन नीचे ढुलक गई; मानो वह उसीकी प्रतीक्षा कर रहा था।

×

×

×

×

जमना की आँखों में आँसू नहीं थे। उस मृत बालक को गोद में लिये वह दौड़ी जा रही थी। वह नगर से दूर, बहुत दूर आ गई थी। आकाश में बीचोबीच सूरज चमक रहा था। जमना के शरीर से पसीने की धार बँधी थी। बाल खुलकर चारों ओर फैल गये थे। झाड़ियों में उलझकर उसकी साड़ी तिकके-तिकके हो गई थी, लेकिन वह रुकने का नाम नहीं ले रही थी। उसने एक हाथ से लड़के के शव को छाती से चिपका रखा था और उसके दूसरे हाथ में दूध की लुटिया थी। वह चली जा रही थी।

लड़के के हाथ-पाँव ऐंठकर लकड़ी बन गये थे; वे हिलते-डुलते नहीं थे। लड़के का मुँह सफेद हो गया था, जैसे किसी ने उसके शरीर का रक्ती-रक्ती खून पी लिया हो।

जमना सहसा खड़ी हो गयी। उसने लड़के को एक ओर लिटा दिया और वह स्वयं गढ़ा खोदने लगी। गढ़े में लड़के का शव रख दिया। फिर लड़के के खुले मुँह में लुटिया का दूध डालते हुए कहा—“मेरे राजा बेटा, दूध पीते जाओ, भूख लगी होगी। मारे भूख के चल न सकोगे। कल कुछ खिला न सकी, आज तो पेट भर दूध पी लो।”

दूध इधर-उधर से बह निकला। दूध की सफेद-सफेद बूंदें आँख, नाक और माथे पर फैलकर सूर्य की किरणों में चमकने लगीं।

“और ये पैसे लो । बस मेरे पास यही है । काम पढ़ने पर खर्च करना । अच्छी तरह से रहना ।”

यह कहकर जमना ने अपनी गाँठ से दो चबन्नियाँ निकालकर लड़के की कमीज की जेब में रख दी ।

और वह स्वयं उठकर पहले की अपेक्षा अधिक वेग से दौड़ने लगी ।

मारे धूप के पृथ्वी और आकाश तप रहे थे । वह बिल्कुल सीधी, झाड़ियों को फाँदती, खेतों को लाँघती, और पौधों की रौंदती चली जा रही थी ।

कहाँ ?

वह सम्भवतः किसी दूर देश को जा रही थी और उसके पास इतना समय नहीं था कि वह दुनिया को अपनी मज्जिल का पता बता सके ।

अभाव की पूर्ति

प्रायः अवकाश के दिनों में मैं अपने मित्र के यहाँ चला जाता हूँ। मित्र शहर में वकालत करते हैं। वकीलों में उनका अच्छा मान है। थोड़े समय में उन्होंने अपने व्यवसाय में काफी पैसा कमाया है और पैसे के साथ-साथ यश भी। मित्र और उनकी पत्नी का स्वभाव बहुत अच्छा है, दोनों ही हँसमुख और मिलनसार। मित्र के एक लड़का और एक लड़की है। लड़का अभी पाँच साल का होगा और लड़की ढाई-तीन साल की। लड़की रक-रककर फूटे-टूटे शब्द बोलने लगी है और अक्सर दो-चार शब्दों को ही दुहराया करती है। सब की देखा-देखी भाई-बहन जब अपने पिता को पिताजी न कहकर वकील साहब कहते हैं, तब सुननेवालों का अच्छा मनोरंजन हो जाता है। इस परिवार के साथ दिन बड़े आनन्द में बीत जाते हैं।

किन्तु इस बार मेरा मन वहाँ एक विचित्र गुत्थी को सुलझाने में लगा रहा। जैसे-जैसे दिन बीतते गये, यह गुत्थी सुलझाने के वजाय ज्यादा-ज्यादा उलझती गई है। यहाँ तक की छुट्टियाँ बीत गईं और मैं उसकी स्मृति को साथ लिये घर लौट आया। समय-असमय उसकी मुधि से मन कुछ धणों के लिए उलझ जाता है, घण्टों बीत जाते हैं, लेकिन सफलता नहीं मिलती।

पहली बार देखकर मैं निश्चय न कर सका कि इस परिवार में इस स्त्री का क्या स्थान है। उसके स्वतन्त्र और आत्मीयतापूर्ण वर्तन को देखकर निस्सन्देह समझा जा सकता था कि यह वकील साहब के निकट-सम्बन्धियों में से कोई होनी चाहिए। किन्तु इससे पहले मैंने उसे इस घर में नहीं देखा था। मित्र के सभी सम्बन्धियों से मैं परिचित था। इसके अतिरिक्त इस युवती के बारे में उन्होंने कभी कुछ कहा भी नहीं था।

इस बार, जिस दिन से मैं यहाँ पहुँचा हूँ, उसी दिन से मेरे मन में इस युवती के बारे में कुछ जानने का कौतूहल रहा है। वकील साहब कहीं बाहर गये थे, उनकी पत्नी से मेरा परिचय पाकर मेरे ठहराने का प्रबन्ध उसी ने किया था। जब उसने मेरा सामान घर में रख दिया और मैं भी आफिस में कुर्सी पर बैठ

गया, तब शिष्टाचार के नाते कुछ बात करने के लिए मैंने उस युवती से यों ही प्रश्न किया—

“तुम्हारा नाम क्या है ?”

“मेरा नाम ? मुझे सब लोग बेबी कहते हैं !”

और वह खिलखिलाकर हँस दी । उसे अपने उत्तर पर आश्चर्य हुआ या आनन्द, मैं निश्चय नहीं कर सका ।

एक पच्चीस-छब्बीस वर्ष की स्त्री को ‘बेबी’ रूप में देखकर मैं भी अपनी हँसी न रोक सका । मैंने हँसते हुए कहा—

“लोग तुम्हें बेबी कहते हैं, लेकिन यह तो बताओ, तुम स्वयं अपने आपको क्या कहती हो ?”

मेरा प्रश्न समाप्त नहीं हुआ था कि सहसा उसकी हँसी गायब हो गई और उसका स्थान गम्भीरता ने ले लिया ।

“अपने आपको मैं क्या कहूँ ? क्या बेबी नाम अच्छा नहीं है ?”

“इतनी बड़ी बेबी किसे बुरी लगेगी ?”

“अरे, आप तो दूसरा अर्थ समझ लिया ! साहब लोगों के यहाँ बड़े-बड़े आदमी भी वाय नहीं कहलाते ? उसी तरह मैं इस घर की बेबी हूँ !”

उसने हँसने का असफल प्रयास किया ।

इसी क्षण से मैं उसके बारे में सोचने लगा हूँ । जल्दी ही मैं इस निर्णय पर पहुँच गया कि इस युवती का वास्तविक नाम कुछ भी हो, किन्तु किसी ने बेबी नाम खूब सोच-समझकर रखा है । सम्भवतः वास्तविक नाम इतना यथार्थ नहीं होगा, जितना यह बेबी नाम उसके लिए उपयुक्त लगता है । शायद इसी लिए उसने अपने नाम के बजाय इस नाम को अपना लिया है । हाँ, यह बात स्पष्ट थी कि बेबी जिस अर्थ में अपने को बेबी समझती थी, मेरी दृष्टि में उसका कोई महत्त्व नहीं था ।

वह इतनी बड़ी हो चुकी थी, लेकिन किसी बात पर टिकना जानती ही नहीं थी । पच्चीस वर्ष की अवस्था में स्त्री काफी प्रौढ़ हो जाती है, किन्तु उसे देखकर ज्ञात होता था, जहाँ समय ने उसके शरीर पर प्रभाव डाला है, वहाँ

उसके मन और आत्मा को वह छू भी नहीं पाया है। मानव-मन पर काल अपने जिन चिह्नों को छोड़ जाता है, वे उसमें कहीं दिखाई नहीं देते थे। उसकी आकृति पर अनुभूतियाँ अंकित न थीं और न भविष्य को कोई आकांक्षा या आशा की झलकही दिखाई देती थी। वकील साहब के बच्चों के साथ खेलते समय वह भी बालिका दिखाई देती। जरा-सी सफलता पर वह खुशी के मारे फूल उठती, उछलती, कूदती और यदि कोई उसे जरा जोर से कोई बात कह दे, तो वह आताङ्कित होकर काँपने लगती। किन्तु यह कम्पन और प्रसन्नता आकाश में उड़नेवाले मेघ खण्डों की छाया के समान अस्थिर होती। मित्र की पत्नी कारणवश उसे कभी झिड़क देती तो वह क्षण भर स्तब्ध दिखाई देती और फिर हँसे-हँसे उन्हें खुश करने का प्रयत्न करती। आकृति पर कोई भाव स्थिर न रहता, उसी तरह जैसे पानी पर खींची गई लकीर अपनी उत्पत्ति के साथ-साथ लय का निर्माण भी करती है। यथार्थ और अयथार्थ को पृथक् करना सम्भव नहीं था। सड़क पर वारात या और किसी सम्बन्ध में बजने वाले बाजे, ताशे या सँपेरे की बीन, मदारी की डुगडुगी और जादूगर की आवाज कान पर पड़ते ही वह अपने सारे काम छोड़कर दरवाजे पर आ खड़ी होती और इन सब चीजों को इतनी तन्मयता से निहारती जैसे वह इन सबको पहली बार देख रही है। घर लौटकर एक-एक को देखी हुई चीजों का विस्तृत विवरण सुनाती। कभी उसके ओठों पर बालकों जैसी पवित्र हँसी नाच उठती; कभी अकारण ही उदासी और बेबसी की मूर्ति दिखाई देती वह ! पच्चीस वर्ष. एक लम्बा-चौड़ा युग आया और चला गया। अपने बाह्य को वह समय के प्रभाव से नहीं बचा सकी, किन्तु उसका अन्तःकरण समय और परिस्थितियों को पहुँच से परे रहा है।

घर में किसी अपरिचित व्यक्ति के आने पर भी उससे इस तरह हँस-हँसकर बात करती, जैसे वह उसे बहुत दिनों से जानती है। उसके मुख पर स्वाभाविक प्रसन्नता झलकती। उसके भावों से इस बात का संकेत भी नहीं मिलता था कि उसके अतीत का कोई अंश वेदनापूर्ण रहा होगा।

मेरी व्यवस्था का सारा भार उसी पर था। मैं जल्दी उठने का अभ्यस्त

हूँ। जब मेरी आँख खुलती, तब तक वह स्नानादि से निवृत्त होकर काम में लग जाती थी। बालकों को नहलाने, कपड़े पहनाने से लेकर घर का पूरा काम वही करती थी। मित्र की पत्नी केवल भोजन बना देती; प्रातःकाल नल में पानी कम आता था, इसलिए वह रात को सात बजे से नौ बजे तक पानी भरती, फिर बरतन माँजती, उसके बाद कपड़े धोने का नम्बर आता। इस तरह मैंने उसे भोर होने से पहले, चार बजे से रात को ११-१२ बजे तक काम करते देखा था, फिर भी वह कभी उदास या थकी दिखाई न दी। वह काम करने के लिए बहाने निकालती। उसकी इस सहिष्णुता से मेरे हृदय में उसके प्रति आदर में वृद्धि हुई, साथ ही मैं अपने मित्र और उनकी पत्नी के बारे में नोचता—ये लोग अब कितने कठोर बनते जा रहे हैं! बेचारी से कितना काम लिया जाता है!

एक दिन मित्र से मालूम हुआ, वह स्वयं काम में जुती रहना चाहती है। लाख मना किया जाता है, उसे झिड़कियाँ मिलती हैं, लेकिन वह दूसरे को घर के किसी काम में हाथ नहीं लगाने देती। रूठ जाती है और अपना अपमान समझती है।

मेरे काम में वह बहुत आत्मीयता दिखाती थी। मेरे कहने से पहले ही वह प्रत्येक चीज तैयार रखती थी। उसके प्रबन्ध में कोई त्रुटि खोजने पर भी नहीं मिलती थी। उसमें स्वभाव को पहचानने की अद्भुत शक्ति थी और वह कभी कोई ऐसा आचरण नहीं करती थी, जो रुचि के अनुकूल न हो। बीच-बीच में मैं उससे कहता—

“बेबी, तुम इतना काम क्यों करती हो? घड़ी भर आराम क्यों नहीं करती?”

“बाबूजी, काम करने में ही आराम मिलता है। जब काम नहीं होता, तब मन भीतर ही भीतर उद्विग्न हो उठता है। मालूम होता है, दुःख का अथाह सागर उमड़ा आ रहा है।”

जब वह बात करती है, तब उसके स्वर में मिठास होती है और आकृति पर प्रसन्नता झलकती है। लेकिन धीरे-धीरे मुझे यह भान होने लगा है, इस प्रसन्नता

के नीचे विषाद की गहरी कालिमा छिरी है। लोगों की दृष्टि से बचाने के लिए वह उसे इस कृत्रिम हँसी से ढँकना चाहती है, फिर भी वह कालिमा कभी-कभी दिखाई दे ही जाती है और ऐसे अवसरों पर उसकी विद्रूपता अधिक बढ़ जाती थी।

जब वह काम करती है, प्रायः कोई न कोई सिनेमा का प्रचलित गीत गुनगुनाती रहती है। उस गुनगुनाहट में एक टीस होती है। कद अच्छा था, दुहरा बदन। अंग-अंग से स्फूर्ति, चेतना और स्वास्थ्य झलकता था। रंग गहरा काला था, किन्तु यह कृष्णता स्वास्थ्य और स्फूर्ति के कारण दृष्टि में खटकती नहीं थी। आँखें छोटी-छोटी और गोल। ओंठ मोटे, नीचे का ओंठ अपनी मुट्ठी के कारण कुछ बाहर निकला हुआ था। वह प्रायः सफेद साड़ी पहनती थी, छापे की पतली किनारवाली। सफेद साड़ी उसके काले शरीर पर अच्छी फबती थी। स्वच्छता का विशेष ध्यान रखती। कोई धब्बा या किसी तरह का मैलापन उसे सहन नहीं था। जब किसी काम से वह बाहर जाती, तब घंटों आइने के सामने खड़ी होकर बाल सँवारती, अधिक से अधिक आकर्षक बनने की चेष्टा करती। शरीर पर आभूषण के नाम पर कुछ भी नहीं था, हाथों में काँच की चूड़ियाँ भी नहीं थीं। हाँ, बाहर जान से पहले वह कुछ फूल खरीद लाती। फूल देखकर वह बहुत प्रसन्न होती, लेकिन ज्योंही फूल कुम्हलाने लगते वह उन्हें देखना भी पसन्द नहीं करती थी। इस बनाव-शृंगार तथा स्वच्छता के विरुद्ध उसके घरेलू कपड़े अधिक स्वच्छ नहीं थे। जिस गुदड़ी पर वह सोया करती, वह काफी गंदी थी और उसकी सफाई पर उसका बिल्कुल ध्यान नहीं था। बाहर से लौटने पर वह अपने वेश-विन्यास में उतनी सावधानी नहीं बरतती थी।

उसकी चाल में गजब की फुर्ती थी। किसी काम के कहने पर वह दौड़-दौड़कर जाती। एक क्षण का विलम्ब सहन नहीं था।

मेरे मन में उसके प्रति सहानुभूति बढ़ती ही गई। यह साहनुभूति उसकी दृष्टि से भी ओझल न थी। धीरे-धीरे वह अपने यथार्थ रूप में मेरे सामने आने लगी। अब वह बात-बात पर हँसती नहीं थी। बातचीत में गम्भीरता से काम

लेने लगी । इस परिवर्तन से आशा होती थी, अब मैं उसके अन्तःकरण तक पहुँच सकूँगा, उसका हृदय मेरे सामने अनावृत्त हो जायगा ।

मेरी छुट्टियाँ बीत चली थीं । मैं घर लौटने की तैयारी करने लगा । एक-एक दिन टल रहा था । मित्र कोई न कोई बहाना बनाकर आज को कल पर टाल देते थे । इन दिनों उसकी आँखों में अपनापन और विश्वास अधिकाधिक दिखाई देने लगा । दूसरे दिन प्रातःकाल की गाड़ी से मैं जानेवाला था । सामान बाँध चुका था । सामान उसी ने बाँधा था । दिन भर उसे मैंने बहुत गम्भीर देखा और बार-बार मेरे पास आकर भी उसके मुँह से शब्द नहीं निकलता था । मुझे प्रतीत हुआ, वह कुछ बोलना चाहती है, लेकिन प्रयत्न करने पर भी उसका मुँह नहीं खुला ।

काफी रात बीत चुकी थी और मैं उसी के सम्बन्ध में विचार कर रहा था । नींद नहीं आ रही थी । इसी समय उसने कमरे में प्रवेश करते हुए कहा—

“आप अब तक क्या सोच रहे हैं ?”

“कुछ भी नहीं । इतने दिनों बाद तुम लोगों से बिछुड़ रहा हूँ, इसलिए नींद नहीं आ रही है ।”

वह कुछ दूर पड़े हुए थैले पर बैठ गई । कुछ देर तक वह चुप रही, मानो बोलने के लिए वह शक्ति एकत्रित करती हो ।

“आपने उस दिन मेरा नाम पूछा था ?”

“हाँ । और आज भी पूछना चाहता हूँ !”

“कल आप चले जाएँगे । फिर कभी मिलना हो या न हो ! आप मेरे बारे में न जाने क्या सोचते होंगे ।” कुछ ठहरकर उसने कहा—“मेरा नाम है कान्ता खरे । बरसों से इस नाम का प्रयोग नहीं हुआ, इसलिए यह नाम मुझे स्वयं अपरिचित लगता है । मैं कभी कान्ता थी, इसकी सुधि भी नहीं आती ।”

उसका कण्ठ धीरे-धीरे आर्द्र हो रहा था ।

“खरे ? तुम महाराष्ट्रीय ब्राह्मण मालूम होती हो ? तुम्हें इतनी अच्छी हिन्दी बोलते देख मैंने इसकी कभी सम्भावना भी नहीं की थी ।”

उसका खरे उपनाम सुनकर मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा । अभी यह

स्थिति उत्पन्न नहीं हुई है कि कोई ब्राह्मण युवती किसी के यहाँ चौका-बरतन करने को विवश हो । रूप-रंग से वह ब्राह्मणी नहीं लगती थी ।

“नहीं, मैं ब्राह्मणी नहीं हूँ ।”

“फिर, यह खरे नाम क्यों पड़ा ?”

“यह भी बताती हूँ । मैं आपको अपनी पूरी कहानी ही सुनाये देती हूँ । उस समय मैं मुश्किल से ६-७ वर्ष की थी । तीन-चार मास के अन्तर से माता-पिता दोनों ही चल बसे । उनकी स्मृति बहुत धुँधली है । मेरे हृदय में उनके जिस रूप की कल्पना है, वह बहुत कुछ मुनी-मुनाई बातों और कल्पना पर आधारित है । हमारा कोई निकट-सम्बन्धी नहीं था । मैं बिल्कुल निराश्रित थी । इसी समय मुझे हमारे पड़ोस में रहनेवाले एक महाराष्ट्रीय ब्राह्मण ने आश्रय दिया । संसार में मैंने अनेक व्यक्तियों को देखा है, लेकिन उन जैसा धर्मात्मा पुरुष आज तक मुझे नहीं मिला ।”

वह श्रद्धा से विभोर हो उठी और उसकी आँखें चमकने लगीं ।

“उन्होंने अपनी सन्तान की तरह मेरा पालन-पोषण किया । उनके इस उपकार से मैं कितनी दवी हुई हूँ, बता नहीं सकती । मैं भी प्राणपण से उनकी सेवा करती थी । जब समय मिलता, तब वे मुझे बड़े प्रेम से पढ़ाते भी थे । मैंने कभी अनुभव नहीं किया कि मैं उस घर में पराई हूँ । यहाँ तक कि किसी के पूछने पर उनके बच्चों की तरह अपने आपको ‘खरे’ कहती थी और पिता के नाम की जगह उनका नाम ही बतलाती । आज भी अपने नाम के आगे ‘खरे’ शब्द लगाते हुए मुझे आनन्द होता है ।

“कितना अच्छा होता, मैं जीवन भर उनकी सेवा कर सकती । मेरे मन में इसकी बड़ी साध थी । लेकिन ज्योंही मैं १५ वर्ष की हुई कि वे मेरे लिए वर को खोज करने लगे । बड़ी दौड़-धूप के बाद इस नगर में ही उन्हें वर मिल गया । वे मिल में काम करते हैं । वे मेरी जाति के थे । अपने परिवार में वे अकेले ही थे । बड़ी खुशी से वे विवाह के लिए तैयार हो गये । मैंने पिताजी से — मैं अपने पालक को इसी नाते से सम्बोधित करती थी और उन्हें अपना पिता

मानती भी थी—अनुरोध किया कि मैं आप की सेवा में अपना जीवन बिताना चाहती हूँ, पर उन्होंने मुझे समझा-बुझाकर विवाह के लिए तैयार कर लिया ।

“मैं पत्नी के रूप में कुल डेढ़ वर्ष रही । इस अवधि में मैं एक घर की मालकिन थी । किन्तु इस थोड़े से समय ने मेरे जीवन को इस तरह ढँक लिया है कि अब जीवन मुझे ग्रामोफोन की उस चूड़ी जैसा लगता है, जिसमें गत का प्रत्येक अक्षर अंकित है और जो हर बार उन्हीं निश्चित स्वरों को व्यक्त कर देता है । मैं अब अपने जीवन में कोई स्वतन्त्र और स्वच्छन्द आलाप या स्वर नहीं सुनती । मेरे पति स्वभाव से मेहनती हैं । उनमें कोई दुर्गुण या व्यसन भी नहीं है, फिर भी न जाने क्यों उनके निकट मुझे एक प्रकार का भय-सा लगता था और मैं हर समय उनके सम्मुख सावधानी से जाया करती । प्रातःकाल मिल की सीटी बजते ही वे जल्दी-जल्दी काम पर चले जाते । उनका प्रत्येक कार्य समयसे बँधा था । मुझे वे कारखाने की मशीन के एक पुर्जे मालूम होते थे । उनकी अपनी कोई सत्ता नहीं थी । मैं उनके घर की मालकिन थी, लेकिन उनका अपना कुछ न था । उनकी मालकिन तो वह मिल या कारखाना था, जिसकी सीटी सुनकर वे उसकी ओर तेजी से खिंचे चले जाते थे । मैं उनकी आत्मा में समा नहीं सकी ।

“विवाह के वर्ष भर बाद मुझे एक लड़का हुआ । मेरी उद्विग्नता न जाने कहाँ चली गई । मुझे सन्तोष हुआ, मेरा कोई है । उस छोटे से मांस-पिण्ड को जिसमें कोई क्रिया न थी, आँखें केवल टिमटिमाती थीं, किन्तु किसी पर स्थिर नहीं होती थीं, उसके किसी अंग से भी ममत्व या ज्ञानपूर्ण संकेत नहीं मिलता था, फिर भी मेरे लिए वह वाणी का पुञ्ज और चेतना का स्रोत था । एक योगी की तरह मैं उस मांस-पिण्ड को चैतन्य और शक्तिमान बनाने की साधना में लगी हुई थी । प्रत्येक क्षण उसी के लिए कटता था । पति के प्रति भी अब मुझमें पहलेवाला विराग न था । वे मुझे कुछ निकट दिखाई दिये । जो समय मिलता, हम दोनों काफी घुल-मिलकर बातें करते । भविष्य के सम्बन्ध में अपने उस शिशु को लेकर हम दोनों भव्य स्वप्न देखा करते । हम दोनों के बीच सम्बन्ध स्थापित करने के लिए एक साधन मिल गया था ।

“किन्तु यह सुख स्थायी न रह सका । बरसात के दिन थे । आकाश में बादल

घिरे हुए थे । एकाएक उस लड़के की साँस जल्दी-जल्दी चलने लगी । कुछ खाँसी का ठसका भी था । उनके काम से लौटने तक वह बहुत उदास हो चुका था और प्रातःकाल हम दोनों को रोता हुआ छोड़ कर वह चला गया ।”

कुछ देर के लिए वह फिर रुकी । इधर-उधर देखने लगी । उसकी आँखों में आँसू छलक रहे थे । मैं भी अपने दुःख को न रोक सका । मैंने कहा—“बेबी, तुम्हें जीवन में कितनी वेदना मिली है !”

इस सहानुभूति से उमड़नेवाले बादल बरस पड़े ।

कुछ देर बाद उसने आर्द्र स्वर में कहा—“अब मेरा कुछ न था । रात आँखों में कटती । अपने बगल में बच्चे की जगह खाली देखकर मुझे लगता जैसे हृदय अभी फट जायेगा, मेरी नसों में रक्त जम गया है । मेरे पति में प्रकट रूप से कोई परिवर्तन दिखाई नहीं देता था, कभी बच्चे के बारे में वे बात भी नहीं निकालते थे । समय पर काम करने जाते । उनमें पिछले दिनों जो आत्मीयता और कोमल भाव उभर आये थे, वे फिर विलीन हो गये । उनका जीवन पहले से अधिक रूखा दिखाई देता था । सायंकाल घर लौट कर भोजन करते ही सो जाते । मैं कुछ बात करना चाहती तब भी वे अपने आपको थका बताकर टालने की कोशिश करते । लगता था, जैसे वे मुझसे वचना चाहते थे । यदि मैं कुछ अधिक प्रयत्न करती तो वे झल्ला जाते थे । अड़ोस-पड़ोस और परिचितों को सन्देह की दृष्टि से देखने लगे थे । किसी पर उन्हें भरोसा नहीं रहा था ।

“मुझे इस समय अपने पालक पिता की याद बराबर सताती थी । इस स्थिति में उनकी स्मृति ही मुझे कुछ सन्तोष देती थी । इच्छा होती, कुछ दिन वहाँ रह आऊँ; लेकिन पति को इस अवस्था में छोड़ना भी उचित नहीं लगता था । जब-जब मैं पिता जी के बारे में चर्चा छोड़ती, वे कुछ उदास दिखाई देते और कभी-कभी उन बातों के प्रति अपनी उपेक्षा भी प्रकट करते । यह उपेक्षा मुझे सबसे अधिक असह्य होती । एक दिन मैंने डरते-डरते उनसे पूछा, “यदि आप आज्ञा दें तो मैं कुछ दिनों के लिए वहाँ हो आऊँ ?”

“कुछ दिनों के लिए क्यों ? तुम चाहो तो हमेशा के लिए वहाँ जा सकती हो ?”

“इस छोटे से वाक्य ने मेरे हृदय में कितना गहरा प्रहार किया था ! मेरे प्रति उनमें कितनी विरक्ति थी ! मैं इस प्रहार को पूरी तरह सह नहीं सकी थी कि उन्होंने मेरे पिताजी के सम्बन्ध में ऐसी बातें कहनी शुरू कीं, जिन्हें याद करके आज भी मुझे असह्य वेदना होती है और जिन्हें मैं अपने मुँह से कह नहीं सकती ।

“मैं अब उस घर में नहीं रह सकती थी । यहाँ आ गई । पिताजी से मिलना चाहती थी । उनके पास कुछ दिन रहने की बड़ी इच्छा थी, लेकिन पति के आक्षेपों को सुनकर मैं वहाँ जाना उचित नहीं समझती थी । वकील साहब से पहले का कुछ परिचय था । इन्होंने मेरे नाम से डाकखाने में खाता खोल दिया है । हर मास पन्द्रह रुपये मासिक जमा कर देते हैं । भोजन वस्त्र यहाँ मिल जाता है ।

“दो-तीन मास बाद मेरे पति मुझे लिवाने के लिए आये थे । इन दिनों उनका आग्रह अधिक बढ़ गया । मुझे उनसे बात करने की इच्छा भी नहीं होती । कभी-कभी यहाँ भोजन भी कर जाते हैं । वकील साहब से एक दिन उलझ पड़े थे ।

“रात बहुत बीत गई । अब मैं चलती हूँ । सो जाइए । कभी याद कर लेना ।”

जब वह उठी तो कुछ खोई-खोई-सी लगती थी, साथ ही आकृति से लगता था जैसे उसका भार कुछ हलका हो गया है ।

प्रातःकाल वकील साहब स्टेशन पर मुझे छोड़ने गये । मैंने रास्ते में कहा—
“आपकी इस बेबी का जीवन भी बड़ा विचित्र है ।”

“अरे, उसका विचार न करिए । वह तो आधी पागल है ?”

उन्होंने कुछ अधिक जानकारी पाये बिना ही अपना मत व्यक्त किया ।

रोग और उपचार

जिस वर्ष मेरा विवाह हुआ, उसी साल श्रीमती जी की बड़ी बहिन के पति ने डाक्टरों पास की। उन्होंने मेडिकल कॉलेज में ऐसे अनेक डाक्टरों की कहानियाँ सुनी थीं, जिन्होंने साधारण मेज़-कुर्सी और आलमारी लगा कर दवाखाना शुरू किया था और कुछ ही समय में नगर के नामी डाक्टर बन गये थे; दूर-दूर तक कीर्ति फैली, हजारों को अच्छा किया, लाखों की सम्पत्ति कमाई। उन कहानियों से आकर्षित होकर साहब ने विद्यार्थी अवस्था में ही सरकारी नौकरी न करके स्वतंत्र प्रैक्टिस करने का निश्चय कर लिया था। उपाधि-सहित नाम का साईन बोर्ड राष्ट्र-लिपि हिन्दी और अन्तरराष्ट्रीय लिपि रोमन के बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा गया था। फर्नीचर बुरा नहीं था। डाक्टर साहब प्रातः छः बजे दवाखाने पहुँचते और बारह बजे घर लौट कर भोजन करते। प्रातः काल का नाश्ता दवाखाने में होता। उनका विश्वास था कि विमारी का कोई समय निश्चित नहीं, न जाने कब किसी को उनकी आवश्यकता हो जाय। वर्ष भर इस विश्वास और लगन में कोई त्रुटि उपस्थित नहीं हुई। इतनी तपस्या के पश्चात् भी यदि मोहल्ले वालों ने अपनी विमारी का इलाज कराने के लिए डाक्टर साहब की शरण नहीं ली तो इसमें खोज करने पर भी किसी को उनका कोई दोष नहीं दिखाई दिया।

नौकरी के लिए आवेदन-पत्र गया। सरकार को गाँवों में भेजने के लिए सुयोग्य डाक्टरों की आवश्यकता है। जल्दी ही बिना किसी सिफारिश या रिश्ते के उनकी नियुक्ति एक तहसील में हो गई। अपने प्रिय-जनों और प्रिय-जनों से अधिक प्रिय नागरिक सभ्यता के बिछोह का दुःख था किन्तु बेकारी के दुःख के मुकाबले में यह वियोग असह्य प्रतीत नहीं हुआ। कुछ दिन बाद श्रीमती जी की बड़ी बहन उनके पास चली गई, और इस तरह डाक्टर साहब उस गाँव में अस्थायी तौर पर बस गये।

उनके हर पत्र में वहाँ की शिकायत रहती थी। यहाँ का वातावरण अनुकूल नहीं। लोग अशिक्षित, न खेलने को क्लब, न दिल-बहलाव के लिए

सिनेमा। संगीत और नेताओं के भाषण स्वप्न की वस्तु बन गये हैं। बिजली नहीं जो रेडियो से मनोरंजन हो जाय। कुछ दिन बाद बैट्री खरीद कर रेडियो लगाऊँगा। प्रिय-जनों का मुँह देखने को नहीं मिलता। कालापानी ह। प्रत्येक पत्र में वहाँ आकर आतिथ्य-ग्रहण करने का आग्रह तो रहता ही था।

प्रेमचन्द जी के साहित्य के पढ़ने से उत्कट इच्छा थी, एक बार गाँव की वास्तविक स्थिति देखने की।

वह गाँव ग्राण्ड ट्रंक रोड के किनारे बसा है। होने को तो वहाँ केवल तहसील और मुंसिफी ही है किन्तु गाँव ऐसे स्थान पर है कि आसपास गाँव वाले अपना अनाज वहीं बेचते हैं और आवश्यकता की सामग्री वहीं से खरीदते हैं। शहरवालों के लिए वह भले ही गाँव हो लेकिन आसपास के खेड़ों और नँगलों के लिए वह शहर था।

दवाखाना गाँव से बाहर बिल्कुल सड़क से लगकर था। सड़क के दोनों ओर वृक्षों की कतार मीलों तक जा कर दूर क्षितिज में एक काली-सी रेखा खींचती हुई विलीन हो गई थी। दवाखाने का घेरा काफी लम्बा-चौड़ा है। शहरों की तरह वहाँ जमीन की कोई कमी नहीं। एक हॉल में बीस पलंग हैं, किन्तु वहाँ हमेशा ३५-४० बीमार रखे जाते हैं। पलंगों से बचे हुए रोगियों के बिस्तर जमीन पर रहते हैं। उस हॉल से पीछे एक दरवाजा पार करके डाक्टर साहब के घर में पहुँचा जाता है। खुला और अच्छा है। सरकारी नौकरों और मालियों के होते सफाई और हरियाली में कोई कमी नहीं थी। कुएँ की मुड़ेर ऊँची और चुनी हुई थी। पास ही एक चूने-पत्थर की बड़ी टंकी थी। पानी उस टंकी में जमा होता था और वहाँ से डाक्टर साहब के घर और औषधालय में लोहे का पम्प लगा कर पानी पहुँचाने की व्यवस्था की गई थी।

दवाखाने के पिछले हिस्से में बिल्कुल दोवार से सटी हुई एक बड़बेरी थी। नन्हे-नन्हे पत्तों से लदी, जिससे उसके काँटे या दुबली-पतली डगाली नहीं दिखाई देती थीं। कहीं-कहीं उन हरे-भरे पत्तों और हरे बेरों के बीच दो-एक गदराये हुए बेर हवा के झोकों के साथ मस्ती से झूल रहे थे। उन गदराये बेरों की भीनी-भीनी सुगन्ध दूर तक फैल रही थी। मैं वहाँ गया और खोज कर एक

बेर खाने लगा । क्या रंग में और क्या रस में बेर काश्मीरी सेब से कम स्वादिष्ट न थे । और अपने हाथ से तोड़ कर तत्काल ताजा बेर खाने का आनन्द ही निराला था । मैंने इससे ही अपनी यात्रा सफल समझी । मैं यह आनन्द लूट रहा था कि डाक्टर साहब ने पीछे से अचानक मेरा हाथ थाम कर आश्चर्य से कहा—“क्या कर रहे हैं आप ? हाथ में काँटा लग गया तो नाहक परेशानी होगी । आप चलकर भीतर वै ए । यदि बेर खाने पर मन चल गया है तो मैं अभी नौकर से कहे देता हूँ, आप जी भर खाइए और जब घर जायँ तो गाड़ी भर साथ ले जायँ ।”

“अपनी असमर्थता को यहाँ से विदा होते समय परख लेंगे ।” मैंने बड़बेरी की डाल से दो-तीन बेर तोड़े और मुट्ठी में रख कर कहा—“अब ममझ में आया, आपकी हर चिट्ठी में यहाँ की शिकायत क्यों रहती थी । यहाँ इतने दिन रहते हो गये आपको कभी अपने हाथ से बेर तोड़ कर खाने की इच्छा नहीं हुई ? आपको यह कैसे समझाया जाय कि छोटे बच्चे को अपने मुँह से माता का बूँद-बूँद दूध चूस कर पीने में कितना आनन्द मिलता है । गाय के स्तनों से दूध निकाल कर किसी बाल्टी से बछड़े को पिलाया जाय तो वह भी इस बिना परिश्रम के प्राप्त पेय से अधिक सन्तुष्ट नहीं होगा । आप यह समझ ही नहीं सकते कि गाय, भैंस और बकरी खुले मैदानों से हरी-हरी घास अपने मुँह से तोड़ कर खाने में जो आनन्द मनाती हैं वह घर में चुन्नी, विनोला और गुड़ चरने में नहीं मानती ।”

डाक्टर मेरी बात सुन कर खिलखिलाकर हँस दिये । हँसते-हँसते ही बोले—“यदि आपको गाय, भैंस की पंक्ति में खड़ा रहना आनन्दप्रद लगता है तो आप खुशी से वैसा कीजिए । यहाँ बेर ही क्या, घास-पत्तों की भी कमी नहीं होगी । लेकिन मुझे डर आपकी श्रीमती जी का है । कहेंगी, लो दो दिन के लिए बहनोई साहब के यहाँ गये थे सो वहाँ हमारे पतिदेव को अपने हाथों बेर तोड़ कर पेट भरना पड़ा ।”

“आपको इस समय मेरी श्रीमती जी का डर लग रहा है या अपनी धर्म-पत्नी का, इसका निर्णय आप स्वयं करें । मैं इतना ही कह सकता हूँ, मेरी ओर

से इसकी कभी कोई शिकायत नहीं होगी । इतना आनन्द आ रहा है कि जी चाहता है, इन बेरों से ही पेट भर लूँ । न जाने आप हमेशा क्यों लिखते रहते हैं कि यहाँ कोई साथी नहीं है, मन नहीं लगता !”

“अगर यह जगह आपके मन इतनी भा गई है तो बस जाइए यहीं । आप-से जाने को किसने कहा है ?”

“लेकिन दुर्भाग्य से मैं आप की तरह डाक्टर जो नहीं हूँ । आप में इतनी दयालुता नहीं जो मुझे जैसे को कम्पाउण्डर ही बना लें ! यदि दया हो तब भी आप जैसे विवेकशाली के विवेक और कर्त्तव्य को कोई कैसे समझाये की वे मुझे जैसे गँवार कम्पाउण्डर के हाथों आपके प्रिय मरीजों का चुपचाप अहित होता रहने दें ।”

“इसकी आप चिन्ता न करें, विवेक कोई न कोई रास्ता निकाल ही लेगा । चलिए हमारा दवाखाना देख लीजिए, कुछ मरीजों से बातचीत कीजिए अकेले तंग आ गये होंगे ।”

“विल्कुल नहीं, अभी तो आप कृपा करके मुझे अपने इस नवीन सहचर से बात करने दीजिए । प्रातःकाल दवाखाना देख लूँगा । लेकिन एक शर्त होगी । रोगियों से मिलने-जुलने की मुझे स्वतन्त्रता रहनी चाहिए और किसी को मेरे-आपके सम्बन्ध का पता न चलने पाये । प्रातःकाल रोगी आते भी ज्यादा होंगे ?”

डाक्टर साहब ने जाने के लिए पीछे कदम रखते हुए कहा, “आपकी जैसी इच्छा । लेकिन कृपा करके बेर खाने में अहर्तिथात से काम लीजिए । ज्यादा खाने में कहीं खाँसी न हो जाय ।”

“सो इसकी चिन्ता मुझे क्यों करनी होगी ? इतने बड़े डाक्टर से सम्बन्ध रखते हुए भी खाँसी जैसे क्षुद्र रोग की चिन्ता करनी पड़ी तो लोग आपको ही वदनाम करेंगे । मुझे तो केवल खाने से मतलब है ।”

×

×

×

×

प्रातःकाल स्नानादि से निवृत्त होकर मैं बाहर आ गया । डाक्टर साहब घर में थे । बाहर लोगों का जमघट लग चुका था । दस-बीस कोस के रोगी

वहाँ आते थे । इतनी दूर से उन्हीं रोगियों को वहाँ लाने का कष्ट उठाया जाता था जिन्होंने बीमारी से दो-चार महीने अवश्य युद्ध किया होगा, यह जब विश्वास हो गया कि सीधे यमराज की शरण में जाने से पहले डाक्टर साहब का प्रमाण पत्र भी साथ ले लिया जाय तब कुछ सुविधा ही होगी । दवा तभी वहाँ से ली जाती थी । दो-चार बैलगाड़ियाँ और एक-दो टाँगे द्वार पर खड़े थे । माँ-बहनों की गोद में तीन महीने के कोमल बच्चों से लेकर तीन-चार वर्ष के लड़के-लड़कियाँ थी । किसी का फोड़ा पका है, किसी की आँखें आई हैं और कोई खाँसी से बेचैन है । गीड़ से बच्चों की आँखें चिपकी थीं, इतनी जल्दी उनका मुँह कौन धुलाये, सूरज की किरणें ज्योंही आँखों पर पड़ीं बच्चा तिलमिला गया, माँ ने धूप से बचाने के लिए उसका मुँह आँचल से ढँक दिया । जब हाथ या कन्धा दुखने लगा माँ ने बच्चे को दूसरे कन्धे से लगाने के लिए बदला, किन्तु इन दो क्षणों के व्याघात में ही बच्चे के मुँह से चीख निकल गई । पीड़ा के कारण और नये तथा खुले स्थान के कारण अधिकांश बच्चे रो-चीख रहे थे । इस समय माताओं को घर ही पीसन और पानी लाने से अवकाश नहीं रहता, इसलिए अधिकांश बच्चे अपने बड़े भाई या बहिनों के साथ भेजे गये । भाई-बहन भी बच्चे ही ठहरे, वे इस चीख-पुकार से तंग आ गये थे, उनकी इच्छा होती, खुली धूप में बैठकर ज़रा शरीर गरम करें या दो-चार दौड़ लगायें । इधर-उधर कुछ लोगों ने तापने के लिए आग जला ली थी, लेकिन रोगी बालक बैठने दें तब न । छोटे बच्चों को भी न जाने क्या ज़िद होती है, एक पाँव पर नाचते रहो तो चूपचाप पड़े रहेंगे जैसे सो गये हों और ज्यों ही आप बैठे कि वह सप्तम स्वर में रोकर अपना अभियोग उपस्थित कर देंगे ।

मेरी नज़र दरवाज़े के पास सड़क पर एक लड़की पर पड़ी जो दवाखाने की ओर आ रही थी । उसकी आयु मुश्किल से सात-आठ साल रही होगी और उसकी गोद में दो-ढाई साल का बालक था । वह दो-दो मिनट के बाद आगे कदम रखती और इतने पर भी उसके पाँव लड़खड़ा रहे थे । कदम रखती तो हाथ में बच्चे का सन्तुलन न रहता और बच्चे को सँभालती तो पाँव उखड़ जाते । दो-चार कदम चलकर ही वह बैठती और फिर थोड़ी साँस लेकर उठती । माँ

ने शायद कहा था, भाई का मुँह खुला मत ले जाना, कोई नजर लगा देगा, इस-लिए बेचारी बार-बार भाई का मुँह चादर से ढँक रही थी, भाई ऐसा हठीला था कि वह दूसरे ही क्षण चादर मुँह से हटा देता। इससे बेचारी लड़की और परेशान थी, फिर भी वह ज्यों-त्यों कर के दवाखाने पहुँच गई !

माताओं को डाक्टर की अपेक्षा अपनी हरें की घूँटी और ओझा के गंडे डोरों का ज्यादा भरोसा था। प्रातःकाल काम के समय बच्चा सताये नहीं इसलिए उन्हें बराये नाम दवाखाना भेज देती थीं जिमसे कुछ समय तक वे निश्चिन्तता से काम कर सकें।

कुछ स्त्रियाँ लहंगा-ओढ़नी पहने थीं, कुछ साड़ी। एक-दो औरतें सूथनी पर लम्बा कुर्ता। उनके कानों में झूलने वाले मोटे-मोटे चाँदी के झुमके मँल से काले पड़ गये थे। जिनकी ओढ़नी या कपड़ा साबत थे, उनका अंग उससे न तो पूरी तरह ढँका हुआ था और न कपड़ा उनकी शोभा बढ़ा रहा था। उनके लिए कपड़ा केवल तन ढकने का साधन है, शोभा का नहीं। इसलिए उसके साफ-स्वच्छ रखने की आवश्यकता नहीं। मँले कपड़ों से भी तो शरीर की लज्जा बच जाती है। दो-तीन गज की ओढ़नी भी मँल के मारे और सलवटों के कारण ओछी पड़ती थी।

इन सब को देख कर मन में प्रश्न हुआ, डाक्टर जैसा स्वच्छता-प्रिय व्यक्ति इन व्यक्तियों की रोग-परीक्षा कैसे करता होगा ? ठंड में इतनी जल्दी आने की जरूरत ही क्या थी ? दवाखाना साढ़े आठ बजे खुलता है, ये लोग छः बजे ही जमा होने लगते हैं। प्रश्न करने पर कम्पाउण्डर ने बताया—“इस समय घर की औरतें पीस-पो लेती हैं, समय निकाल कर आ जाती हैं। लेकिन नौ-दस बजे तो वे खा-पीकर अपने खेतों पर जाती हैं। दूसरे इन लोगों का भरोसा है, ज्यों-ज्यों सूरज चढ़ता है बीमारी दब जाती है। निराहार रह कर सुबह हाथ दिखाने से बीमारी का निदान अच्छा होता है। सब से बड़ा कारण है—बीमार आते हैं ज्यादा, डाक्टर साहब सब को देख नहीं पाते। जो देर से आया वह पीछे पड़ जाता है। रोज़ पचासों रोगियों को यों ही लौटना पड़ता है। कारण—कोई एक होगा, पर रोग की अपेक्षा यह परेशानी भी उनकी कम नहीं !”

“तुम्हें क्या हुआ है, बाबा ?” मैंने एक वृद्ध में पूछा। वृद्ध की एक आँख पर पट्टी थी, ऊपर पगड़ी में एक कागज का नोला-सा पुट्टा लगा था, जिससे आँख धूप से बची रहे।

“बेटा, इस आँख में फूला पड़ गया था। अमृतसर का एक दवा बेचने-वाला डाक्टर आया था। पहले बीस रुपये माँगता था, फिर दस रुपये पर राजी हुआ। बोला, आँख से दीखने न लगे तो दस के सौ ले लेना। उसके नाम के पुर्जे भी छपे थे। हमारे लिए तो काला अक्षर भैंस बराबर। पड़ोसी के लड़के रामधन ने पढ़ा था, उस डाक्टर की बड़े-बड़े लोगों ने तारीफ की थी। न जाने कौन-कौन राजाओं ने उसे सर्टिफिकेट दिये थे। न जाने क्या कर गया, फूला गया नहीं, उल्टे सिर में जोर का दर्द रहने लगा है। आँख में जो पहले परछाई-सी पड़ती थी, अब वह भी गायब हो गई। उसे कहाँ खोजें। उस बेचारे का दोष भी क्या, उसने अच्छा ही किया होगा। दोष तो सब हमारे कर्मों का है। पुराने जमाने में ऐसे बैद थे, नवज देख कर बीमारी पहिचान जाते। मैंने उस अमृतसर वाले डाक्टर से कहा था—डाक्टर साहब, पहले नवज देखकर पहिचान लीजिए, आँख में कौन रोग है। उसने कहा, आँख का रोग बिना नाड़ी के ही समझ में आ जाता है। यही उसकी गलती हो गई !”

वृद्ध ने अपनी ग्रामीण भाषा में यह उत्तर दिया। मुझे वह भाषा बहुत मधुर लगी। उसमें भावों को व्यक्त करने की इतनी सरलता और सामर्थ्य थी कि घण्टों उसे सुनने की इच्छा होती थी।

पास बैठे हुए एक दमे के रोगी ने अपनी खाँसी को किसी तरह रोक कर कहा—“अजी राम कहो। आज-कल के ये छोकरे क्या समझें रोग किस चिड़िया का नाम है ! बात-बात में चीरा-फाड़ी। रोग का जड़-मूल समझते नहीं। हमसे ही पूछते हैं—क्या हो गया है ? दस्त साफ आता है या नहीं ? क्या बीमारी है ? अगर हमें ही बीमारी का पता हो तो इतनी दूर से यहाँ आने की जरूरत ? अपने गले में जो खड़ की नली डाले रहते हैं उसे छाती पर लगाकर खुद हिरदै से पूछ लें। हमारे गाँव से सात कोस पर एक नांगला है। उसमें के केंसू मिसर के दादा के भाई रामेसुर बैद का नाम कलकत्ता-बम्बई तक

मशहूर था। बाबू जी झूठ न मानिए, हम सुनते हैं, रामेसुर बैद नाड़ी देखकर व्रता देते थे रोगी ने महीना भर पहले क्या खाया था। उनके पास कहीं से एक रोगी सेठ इलाज कराने आया। हालत यह थी कि अब मरा तब मरा। बैदजी ने इलाज किया, सेठ अच्छा हो गया। सेठ अचानक ही फिर ज्यादा बीमार हो गया। बैदजी ने नाड़ी देखी तो बोले, 'सेठ, तुमने मूली खाई है।' सेठ क्या जवाब देता। उसने मूली खाई थी। बैद जी ने कहा डरने की बात नहीं, हमें रोम-रोम की बात मालूम हो जाती है। जो पेट की बात नहीं जानेगा वह बैदकी क्या खाक करेगा? हाँ परहेज कड़ा करना पड़ेगा। वह लोग परहेज पर बड़ा जोर देते हैं।"

इतना कहकर बूढ़ा फिर खों-खों करने लगा।

कुछ दूर बैठे हुए एक किसान पर मेरी दृष्टि गई। औंधे मुँह सिकुड़ा हुआ पड़ा था। कँपकपी छूट रही थी, दाँत कटकटा रहे थे। मेरे पाँवों की आहट पाकर उसने कहा—“कौन हो भाई? ज़रा मुझे मेरी दोहर उढ़ाते जाओ; बड़ा पुण्य होगा।"

मैंने उसकी जाड़े की दोहर उस पर अच्छी तरह डाल दी। फिर मैं स्वयं उसके सिरहाने इस तरह बैठ गया, जिससे मेरे शरीर की गर्मी उसे पहुँचती रहे।

पन्द्रह-बीस मिनट तक उसे सहारा दिये मैं वैसे ही बैठा रहा। उसका रोम-रोम काँप रहा था। रह-रह कर कँपकँपी के बजने वाले तारों के स्पन्दन का स्पर्श पा मैं भी सिर से पाँव तक काँप जाता था। उसके शरीर में मानों सागर की लहरें उमड़ रही थीं। साँस रुका-रुका-सा चलता था, बीच बीच में अँगड़ाई के साथ उसके मुँह से विवश आह निकल जाती थी। कुछ देर बाद चादर को भेद कर गरम-गरम भाप आने लगी। उसका शरीर अब गरम हो रहा था। उसने लरजते स्वर में कहा—

“आप जुग-जुग जियें। आज मेरे प्राण ही निकल गये थे। जोर की प्यास लगी है, दो घूँट पानी पिला दो तो जनम-जनम ऋण मानूँगा।"

मैंने उसे पानी लाकर पिलाया। प्रश्न किया—“इस हालत में तुम यहाँ क्यों आये भाई? तुम्हारा घर कहाँ है? चलो मैं तुम्हें घर पहुँचा आऊँ।"

“बाबू मेरा घर इस गाँव में नहीं है यहाँ से तीन कोस ...पर मेरा खेड़ा...है। सड़क से लगी वह ...पगडण्डी दिख रही है ना वही मेरे..... गाँव को पहुँचती है। ससुर यह जूड़ी...बड़ी वाहियात है सारी...सुध-बुध भूल जाता हूँ। बुखार का जाड़ा हाथी की देह भी तोड़ देता है। दवा लेकर अकेला चला जाऊँगा तब तक धूप खिल जायेगी।”

वह तीन कोस चल कर आया था। मेरे लिए विश्वास करना सरल न था।

“तुम्हें बुखार कब से आ रहा है ?”

“हो गये होंगे ढाई-तीन महीने तो।” उसने विलकुल सरलता से उत्तर दिया।

“ढाई-तीन महीने हो गये। दवा नहीं ली ?” मेरे स्वर में आश्चर्य था।

“क्या दवा लेता ? यह बुखार तो योंही चढ़ता-उतरता रहता है। इसकी दवा-दारू करने बैठें तो काम कैसे चले ? गरम-गरम दाल-दलिया पीकर, ओढ़ कर सो रहे, पसीना आया और बुखार उतरा। न हो तो सोंठ-पीपल डाल कर तुलसी का काढ़ा भी पी लिया।.....लेकिन इस बार न जाने यह कैसा पापी बुखार पीछे पड़ा है। छोड़ने का नाम ही नहीं लेता।.....दुनिया भर के गंडे-ताबीज बाँधे, जादू-टोना किया और जब बस न चला तो डाक्टर के पास आया। दवा में ऐसी बदबू भारती है कि दम घुटने लगता है। स्वादनीम से भी कड़वा। घर वालों के कहने पर यहाँ से दवा ले जाता था और योंही डाल देता था। अब हार कर पीनी पड़ रही है। कभी रोज़ आ जाता है बुखार, कभी एक दिन आड़। दिन निकलते ही आ दवाता है। (कुछ रुक कर) आजकल गेहूँ के खेत में पानी देना होता है। साझे की खेती, साझी कितने दिन चुप रहेगा ? चार घड़ी रात रहते ही कुआँ चलता है। सुबह ठंड के कारण मैं बारे लने नहीं जाता। दिन चढ़ने पर क्यारियों में पानी देता हूँ। आधी रात तक खेत की रख-वाली करने की वारी है। इस बुखार से कुनवा परेशान है। इस पर कम्पाउण्डर दो दिन से ज्यादा की दवा नहीं देता। हर तीसरे दिन दवा के लिए इतनी दूर चल कर आना पड़ता है, काम का हर्ज होता है सो अलग।”

डाक्टर दवाखाने में आये। डिस्पेन्सरी का दरवाज़ा खुला। मरीज़

एक दूसरे से पहले दवा पान के लिए धक्कम-मुक्का करने लगे । अब तक उदास, वेदना से पीड़ित और निष्क्रियता के मारे इन रोगियों में कुछ क्षण के लिए इतनी स्फूर्ति, इतनी चेतना आ गई थी, जैसे बीमार नहीं हैं । छोटे बालक और स्त्रियाँ दूर किनारे पर खड़े हो गये । उनके लिए भीड़ में दूसरा उपाय न था ।

मैं डाक्टर साहब की बगल में बिछी कुर्सी पर जा बैठा । डाक्टर गदन झुकाये ही संक्षिप्त प्रश्न करते —“क्या हो गया है ?” अभी उत्तर भी पूरा नहीं होता कि उनकी कलम नुस्खा लिख कर तैयार कर देती । बहुत कम सौभाग्य-शाली रोगी थे जिनको उन्होंने अपनी दृष्टि से देखकर रोग का निदान किया । ५०-६० से भी अधिक मरीज और केवल तीन घंटे । और उपाय भी क्या था ? मैं अपलक इस क्रिया को देख रहा था । कभी किसी रोगी को देखता, कभी डाक्टर साहब को ।

एक घण्टा बीता होगा, जितने रोगी गये उनका स्थान नयों ने लिया । इसी समय पुलिस का थानेदार तीन-चार साथियों के साथ बेलगाड़ी पर कपड़ों में लिपटी लाश लाद कर लाये । गाड़ी के पीछे-पीछे आठ-दस किसान—नर-नारी थे ।

किसानों ने लाश उतार कर ऑपरेशन टेबल पर सुलाया । मरीज कमरे से बाहर कर दिये गये । किसान नर-नारी उदास मुख किये उस लाश को चारों ओर से घेर कर बैठ गये । एक स्त्री अधिक उदास दिखाई पड़ रही थी, वह रह-रह कर सिसकियाँ भरती और अपलक दृष्टि से उस लाश की ओर ताक रही थी ।

थानेदार डाक्टर को सलामी देकर सामने बैठ गया । वह पान चबा रहा था । पान के रंग से रंगे लाल-लाल ओंठों पर मुस्कान लाते हुए उसने कहा—“डाक्टर साहब, आज हमारा आपका पहिला ही मामला है । बौनी कुछ बुरी नहीं हो रही है । खुदा ने चाहा तो आगे चलकर आपकी ज्यादा से ज्यादा खिदमत कर सकूँगा ।”

इतना कहने के बाद उसकी ओंठों की मुस्कान आँखों में समाती दिखाई

की ओर वह फिर बड़े गौर से डाक्टर के मुँह की ओर देखने लगा। जैसे वह उनके मनोभावों को ध्यान-पूर्वक पढ़ रहा हो।

“आप मेरी खिदमत क्यों करेंगे ? आपकी इस कृपा का अर्थ मैं पूरा-पूरा नहीं समझ सका।” डाक्टर ने आश्चर्य भरी निगाह से थानेदार को सिर से पैर तक देखकर कहा।

“ही-ही-ही” थानेदार खिसियानी हँसी हँस कर बोला—“जी हाँ,” मेरे कहने का मतलब है, जी हाँ, आपको इस पेशे में आये बहुत दिन नहीं हुए हैं, हाँ सच ही कह रहा हूँ, खुदा की कसम, आप जल्दी ही इन सब बातों से वाकिफ हो जायेंगे। इसका पूरा जिम्मा मेरा रहा। काम करते-करते ही इन्सान माहर होता है।”

“आप जो कुछ कहना चाहते हैं साफ-साफ कहें !” डाक्टर साहब के स्वर में उग्रता आ गई थी।

“जी, साफ-साफ ही कहता हूँ। लेकिन”—कहकर थानेदार ने मेरी ओर सन्देह की दृष्टि डालकर, आँखों में ही डाक्टर से जैसे प्रश्न किया।

“आप इनकी चिन्ता न कीजिए। घर के आदमी हैं।”

विश्वस्त होकर थानेदार ने कहना शुरू किया “जी हाँ। बात यह हुई, डाक्टर साहब, पास के गाँव में दो भाइयों में यों ही तकरार हो गई। बड़े भाई को जरा जोश आ गया। उसने डराने के लिए गँडासा फेंका। उनका मकसद छोटे भाई की जान लेना नहीं था। गँडासा छोटे भाई की गर्दन पर गिरा और वह वहीं दस-पाँच मिनट बाद ही ढेर हो गया। पुलिस और अदालत मुजरिम की नियत को बहुत अहमियत देते हैं। अगर बड़े भाई की नियत छोटे को मारने की होती तो हम उसे कभी न छोड़ते। मैं जब पहुँचा, तो बड़ा भाई अपने किये पर दहाड़ मार-मार कर पछता रहा था। पाँवों पर सब घर के लोग गिर गये। आप अगर चाहें तो घर भर के प्राण बचा सकते हैं।”

“मेरे चाहने से क्या होगा ?”

“आपके चाहने से बहुत कुछ हो सकता है, सरकार ! वस आपकी

इन गरीबों पर महरबानी हो । आप इतना सर्टिफिकेट लिख द कि इस आदमी की इत्तेफाकिया मौत हुई ।”

“इत्तेफाकिया मौत !” डाक्टर के स्वर में आश्चर्य, विस्मय और न जाने क्या एक साथ ध्वनित हो उठा । पुलिस का ओहदेदार इतनी बड़ी झूठ बुलवाने के लिए इतनी सरलता से आग्रह कर बैठेगा उसकी सम्भावना न तो डाक्टर को थी, न मुझे ही । डाक्टर ने कुछ रुक कर कहा—“मैं कैसे लिख सकता हूँ ? साफ कल्ल हुआ है, लाश खून में लथपथ है ।”

थानेदार के चेहरे पर अब वह स्वाभाविक मुस्कान नहीं रही । कुछ क्रोध और ग्लानि से, बिना सर उठाये उसने कहा—“हुजूर, इन सब बातों को कौन जानता है ? गाँवों में रोज़मर्रा यही होता है । इन सब मामलों को हम अदालत तक ले जायँ तो हाकिमों को एक मिनिट की फुर्सत न मिले । आप अभी इस पेशे में नये आये हैं । आखिर आप समझिये हम लोगों को—आप यही समझ लीजिए कि.....मैं साफ-साफ बताता हूँ, जो यहाँ आपसे पहिले डाक्टर थे, वे तो हमेशा ऐसे मौकों की ताक में रहते थे । दस-पाँच दिन खाली गुज़र जाते तो कहते थे, दारोगा साहब, कोई मुर्गी लाइए न !” थानेदार ने अपनी बात समाप्त करके उन किसान नर-नारियों की ओर संकेत किया जो लाश के साथ आये थे !

उनमें से एक स्त्री आई और दस-दस के पाँच नोट डाक्टर के सामने रखकर उनके पाँवों पर लोट कर रोने लगी । रुदन से आस-पास का वातावरण करुण हो गया । रुदन के चीत्कार के बीच-बीच में वह स्त्री कह रही थी—“डाक्टर राजा, मेरा सुहाग लुट गया । अब तो मेरे खसम के प्राण आयेंगे नहीं, मेरे जेठ को बचा लीजिए, नहीं तो हमारा घर बरबाद हो जायेगा ।”

डाक्टर ने थानेदार को सम्बोधित करके कहा—“थानेदार साहब, मुझसे यह सब नहीं होगा ।”

“नहीं होगा मत कहिए । आप रुपयों की तरफ मत देखिए, इन लोगों के प्राण बचाइए, नहीं तो घर अनाथ हो जायेगा । आप भरोसा रखें इससे अधिक

ये लोग आपकी सेवा नहीं कर सकते । ये लोग बड़ी मुश्किल से इतना जुटा पाये हैं ।”

“थानेदार साहब, अपनी बकवास बन्द कीजिए !”

डाक्टर ने लाश का निरीक्षण कर, जो प्रमाण पत्र देना चाहिए था वही दिया । उस घटना से उनके मन में उदासी छा गयी थी । दूसरे मरीजों को न देख वे घर चल दिये । मरीज निराश हो खाली हाथ लौटने लगे ।

बाहर निकल कर उन्होंने मुझसे पूछा—“अब तो आप डाक्टर या कम्पा-उण्डर में से कुछ बनना नहीं चाहेंगे न ?”

“एक ही दिन में उत्तर कैसे दे सकता हूँ ?”

हम दरवाजा पार करके घर के अहाते में घुसे, इतने में एक स्त्री जो अपन को एक फटी-सी गुदड़ी में छिपाये थी आकर डाक्टर के पाँवों पर गिर गई । उसके हाथ-पाँव सूखकर लकड़ी बन गये थे । चेहरा पीला, खून का कहीं नाम नहीं । कहने में अत्युक्ति होगी, फिर भी कह डालता हूँ, यदि उसके शरीर की परीक्षा की जाती तो शायद मुश्किल से दस-बीस बूँद खून निकलता ! उस स्त्री ने दोनों हाथ जोड़ कर गिड़गिड़ाते हुए कहा—डाक्टर बाबू, तुम्हारे बाल-बच्चों की खेर मनाती हूँ । बड़ी तकलीफ है, कोई दवा दीजिए ।”

“यों पड़ी क्यों जाती है ? क्या तकलीफ है ?”

स्त्री ने उठने की कोशिश की, पाँव काँप गये । सहसा उठ न सकी । बैठे-बैठे उसने काँपते स्वर में कहा—“बाबूजी, तीन दिन पहले मुझे लड़का हुआ है । उसे मैं अपने पति के पास छोड़ आई हूँ । मेरी छातियों में दूध नहीं उतरा । जिस दिन लड़का हुआ उसी दिन से मुझे जोर का बुखार चढ़ा है । तब से उतरा नहीं । मैं अपनी भुगत लूंगी । मुझे बारह वरस तक बुखार बना रहे तब भी फिकर नहीं । लेकिन बच्चे का बिलखना मुझसे नहीं देखा जाता !”

“देखूँ तेरा हाथ” कहकर डाक्टर ने झुक कर उस स्त्री का हाथ देखा और चौंक कर बोले “अरे तेरा शरीर तो भभक रहा है । हाँ, बुखार १०३° होगा । प्रसूति ज्वर मालूम होता है । परसों बच्चा हुआ, इतना तेज बुखार है, ऐसे मैं तू यहाँ तक आ कैसे गई ?”

“घर पास में ही है। मुबह का बबत था, कुछ हलका मालूम हुआ, जैसे तैसे करके यहाँ आ गई। आप मेरे बुखार की चिन्ता न करें। कोई ऐसा दवा दीजिए, जिससे छातियों में दूध भर जाय। बच्चे की जान बचे।”

“अच्छा, चल दवा दिलाये देता हूँ !”

मैं भी उनके साथ हो लिया। डाक्टर ने नुस्खा लिखकर उससे कहा—
“यह दवा है। इसे तीन-तीन घण्टे से लेना। हाँ, अन्न नहीं खाना। अन्न खायेगी तो नहीं बचेगी। जितना हो सके दूध पी।”

स्त्री दो-चार क्षण अपनी फटी-फटी आँखों से डाक्टर का मुँह देखती रही। फिर उसने कहा—“डाक्टर साहब, अगर अनाजही खाने को मिलता तो मुझे यह बुखार क्यों चढ़ता और दूध के लिए बालक को विलखना क्यों पड़ता ? आज सात दिन से हमारे घर में अनाज का दाना नहीं है। खेत की गाजर पर गुजर कर रहे हैं। इस बीच यह लड़का हो गया। कोई ऐसी दवा दीजिए जिससे दूध आ जाय।”

इतना कह कर वह उसी तरह डाक्टर को देखती रही—या सम्भव है उसे कुछ भी दिखाई न दिया हो। मैंने देखा, वह अब पत्थर की मूर्ति की तरह स्थिर और स्तब्ध हो गई है।

मैंने मुँह फेर कर अपनी आँखें दस्ती से पोंछ लीं !

बछड़े

(१)

मुझे अपने बचपन की सबसे पुरानी जो घटना याद आती है, उसी का वर्णन करने चला हूँ। उस समय मेरी आयु अधिक नहीं थी। एक दिन हमारे घर में सुबह-सवेरे से ही विशेष उत्साह दिखाई देने लगा। उस दिन भोर होते ही पिताजी गढ़ चले गए थे। गढ़ हमारे गाँव से तीन मील था। वहाँ प्रतिवर्ष गर्मियों में जानवरों का मेला भरता था ! लोग दूर-दूर से जानवर बेचने-खरीदने आते थे। गर्मी के दिन थे, पिताजी ठण्डे-ठण्डे में चले गए। हम लोग उस समय सो रहे थे।

माँ ने घर का वह छप्पर खोल रखा था, जो बारहों महीने बन्द रहता था। इस छप्पर को ताला कभी नहीं लगाया गया; लेकिन हम उस के भीतर भी नहीं जा सकते थे। बाहर ही से चकित नेत्रों से देखा करते। उस छप्पर में दादा, परदादा और न जाने कितनी पीढ़ियों का सामान जमा था। घर की बेकार-से-बेकार चीज़ फेंकने के बजाय इस छप्पर में रखी जाती थीं। पानी पीने की हण्डिया जब उतर जाती तो वहीं बन्द कर दी जाती और समय आने पर उनसे काम लिया जाता। शादी-व्याह के मौके पर जब कभी यह छप्पर खुलता हमलोग बड़े उत्साह से उसमें प्रवेश करते थे। माँ रोकती—बाहर रहो, कोई साँप-बिच्छू काट खाएगा, लेकिन उन दिनों हम लोगों को बिच्छू का ज्यादा डर ही नहीं लगता था।

माँ धूल में भरी थी। एक कोने के बाद दूसरे कोने की खोज हो रही थी। एक बड़ा माट बाहर निकाला गया, इसमें कभी दही मथा जाता था। मैं मुनता आया हूँ, दादी के समय उनके पुण्य-प्रताप से हमारे घर गाय-भैंसें थीं। घर की गाड़ी और बहली थी। हमारा घर गाँव के किनारे पड़ता था, वहीसे गाँव में दाखिल होने का रास्ता जाता था। प्रातःकाल जो राहगीर गाँव में आता गर्मियों में छाछ-राबड़ी और जाड़ों में दूध-राबड़ी का कलेवा अवश्य करता। हम दादी के जमाने की कल्पना मात्र कर सकते थे। हमारा वह वैभव कैसे

समाप्त हो गया, इसका इतिहास मुझे आगे चलकर मालूम हो सका। उस समय मैंने केवल यही देखा, दादी का विलौना जो कभी लूणी-घी से तर रहता था, सूखा पड़ा था और उस पर धूल जमी थी। छान में खोसी हुई रई (मथनी) निकाली गयी। नेती (मथनी चलाने की रस्सी) जर्जर हो चुकी थी, इसलिए पुरानी धोती फाड़कर छोटी-सी रस्सी बँटी गयी। कड़बी काटने का गँड़ासा, दूध गरम करने की मिट्टी की अँगीठी, घास खोदने की खुर्पी, एक-एक करके ये सभी चीजें बाहर निकाली गयीं। बहुत दिनों बाद उन चीजों की सफाई का नम्बर आया।

मैं दूध परोसने का पौआ साफ कर रहा था। इतनी तत्परता से कभी किसी राजपूत ने अपनी तलवार भी नहीं चमकाई होगी। पौवा लोहे का था, जंग खा गया था; लेकिन मैंने भी इतने धिस्से लगाये कि चाँदी की तरह चमचम करने लगा। मैंने उसकी चमक माँ को दिखाते हुए पूछा, माँ मुझे दूध दोगी न ? और माँ ने भी तत्काल कहा—हाँ इसी पौए से दूँगी, रोजाना दो पौए। लेकिन रम्मू को दूध नहीं मिलेगा।

मेरा छोटा भाई रम्मू पास ही गुल्ली-डंडा खेल रहा था। माँ का हाथ नहीं बँटा रहा था।

मैं वर्तन साफ कर रहा था और कल्पना का घोड़ा दौड़ा रहा था। हमारे घर आज एक नहीं—दो गायें आ रही थीं; गायों को खरीदने का प्रबन्ध न जाने कैसे हुआ था। आगे चलकर मैं इतना ही जान सका कि गाय के घी पर हमारा कोई अधिकार नहीं है। जिस साहू ने रयये दिये थे, उसने करार करा लिया था कि हर हफ्ते चार सेर लूणी घी उसके यहाँ पहुँच जायगा। यह घी गाय के मूल रुपयों में नहीं ब्याज में जमा होता था। घी के लोभ में दूध भी कम खर्च किया जाता था। हाँ, छाछ का ठाठ था। छाछ से तसल्ली हो जाती थी। लेकिन उस दिन मेरा विचार दूसरा था। सोचता था, दो गायें कम-से-कम दस सेर रोजाना दूध देंगी। दस सेर दूध हमारे परिवार के लिए काफी होता। बेचने की बात उन दिनों कोई सोच नहीं सकता था। दूध-पूत बिकते जो नहीं। मैंने निश्चय किया था, सुबह दूध निकलने व गरम होने में देर होगी,

में दही के साथ वाजरे की रोटी का कलेवा कलूँगा । एक-दो बार पड़ोस से दही आया था और ऐसे कलेवे का आनन्द उठा चुका था । दही-रोटी के कलेवे से विद्या माता भी खूब आयेंगी । साँझ को दूध में रोटी मीज कर खाऊँगा । ढण्ड-बैठक ज्यादा मारूँगा ।

(२)

मैं गाय के रंग की बात सोचने लगा । मुझे नीली गाय पसन्द थी । हमारे गाँव की गायें ज्यादातर सफेद थीं । मुश्किल से दस-पाँच नीले रंग की, दो-चार चितकबरी और एक-दो लाल-पीली । कपिला गाय के आगे मैं हाथ जोड़ता था, कभी उसे चने की दाल खिलाता । लेकिन वह देखने में अच्छी नहीं लगती थी । मुझे नीली गाय भाती थी । मैंने सोचा दोनों में से एक गाय अवश्य नीली होगी, बिल्कुल नीली कच्च नीले गगन जैसी । मैं नीली को ही अपनी गाय बनाऊँगा । अब सींगों का सवाल आया । मुझे बड़े सींग पसन्द नहीं । हमारी नजर सबसे पहले गाय के सींगों पर ही जाती है, सींग गाय का श्रृंगार है, उसी तरह जैसे केश में स्त्रियों की शोभा है । अगर आँखें सींगों में ही उलझ जायें तो अच्छा नहीं । मैंने माँ से कहा—“माँ, पिता जी छोटे-छोटे, गोल, मुडोल सींगों की गाय लायेंगे ? दोनों सींग नोकदार हों ।”

माँ ने उत्तर दिया—धत् पगले, बड़े सींग की गाय दूध ज्यादा देती है, जंगल में चरने गई तो उसकी धाक रहेगी । शेर का मुकाबिला पड़े तो लम्बे सींग की गाय पीछे नहीं हटती ।

मैं शेर के मुकाबिले की बात नहीं सोच सकता था । हमारे गाँव से कुछ हटकर पहाड़ी थी, उस पहाड़ी में कभी-कभी चीता आ जाता था । चीता गाँव के दो-चार कुत्ते ले जा चुका था ।

बर्तन माँज-धुलकर तैयार हुए । ज्यादातर मिट्टी के बर्तन थे । लोहे-पीतल के बर्तनों पर कहीं-कहीं काले धब्बे रह गये थे जो प्रयत्न करने पर भी नहीं उतर सके । साफ-सुथरे वे बर्तन जैसे हम लोगों को आशीर्वाद दे रहे थे । बरसों बाद उनके भाग जागे । उस दिन खूँटा गाड़ने की लकड़ी नहीं थी, लेकिन स्यानी की ल्हास और दूसरी चीजें तैयार कर दी गयीं । गाय बाँधने की

रस्सी पिता जी साथ ले गये थे। मेले में मजबूत रस्सी नहीं बिकती। वह दिन कब उगा और कब छिमा इसका पता ही नहीं चला। सन्ध्या हुई। गाय-भैंसें घर लौटीं। हाल की व्यायी गायें रंभा-रंभाकर तेजी से आगे-आगे आ रही थीं, बाखड़ी गायें सबसे पीछे धीरे-धीरे लापरवाही से आती थीं। गो-धूलि का समय किसी भी गाँव में बड़ा सुहावना होता है। गो-खुरों से उड़ी धूल, अपनी गाय बाँधने के लिए किसानों को दौड़-धूप, माँ की आहट पा बछड़ों की उछल-कूद और बाँ-बाँ की ध्वनि से गाँव में जैसे प्राण आ जाते हैं। इन गायों का लौटना देख मन मारे खुशी के सना नहीं रहा था। कल हमारी गायें भी कूदती-फाँदती आयँगी। माँ उन्हें चारा डालेगी और न जाने कितने दृश्य आँखों के आगे घूम गये।

अँधेरा हो गया था, पिताजी नहीं आये थे। हम लोग रास्ते पर टकटकी लगाये देख रहे थे। कुछ समय बाद दो गायें दीखाई दीं। पिताजी उनके पीछे रस्सी थामे आ रहे थे। गायें अनिच्छा से कदम बढ़ा रही थीं। गायों के साथ अपने-अपने बछड़े भी थे। गाय ज्यादा दिन की व्याई नहीं थी, बछड़े खुले थे, अपने आप आ रहे थे। पहिली बार इन्हें माता का यथेच्छ दूध पीने का अवसर मिला। बछड़ों को देख हम दोनों भाई खुश हुए। हमने अब तक बछड़ों के बारे में सोचा ही नहीं था। गायें सीधी थान पर ले जाई गयीं, जहाँ उनके लिए खल में सनी सानी रखी थी। माँ भीतर गयीं और दो लोटे पानी ले आयीं। गायों के खुरों की कुंकुम अक्षत से पूजा की, दोनों गायों को दुलराया और फिर हाथ जोड़कर बोली—गैया माता, बाल-बच्चों की रिच्छा करना। गाय ने इस प्रार्थना को सुनाया नहीं, गाय ही जाने, लेकिन हमने देखा माँ का स्पर्श पा दोनों गायें मिर झुकाये कान हिलाने लगीं। उस दिन गायों ने मुँह नहीं लगाया। उनकी आँखों में उदासी थी। रास्ते की थकान के अलावा कोई दूसरी बात भी थी जिससे गायें प्रसन्न नहीं थीं। उस दिन वे यों ही अटका दी गयीं। बछड़े बाँधे नहीं गये।

पिताजी गायों के बारे में माँ से बात कर रहे थे कि किस गाय के कितने दाँत हैं, कौन पहलून है और कौन दो जून। मोल-तोल कैसे हुआ। इतनी

सुशील गायें कैसे मिल गयीं । हम दोनों भाई अपने गाय-बछड़े वांट रहे थे । सौभाग्य से एक गाय नीली थी और दूसरी सफेद । सफेद का बछड़ा सफेद ! मेरी इच्छा पूरी हुई । नीला बछड़ा मेरा था । छोटे भाई ने सफेद बछड़ा लिया । हम लोग उनका सिर सहलाने लगे । घर से गुड़-रोटी लाये । बछड़ों ने रोटी नहीं खायी । गायें अपने-अपने बछड़ों को चाट रही थीं । हम लोग बाल्टी में पानी लाये । बछड़े और गाय ने पानी नहीं पिया ।

(३)

जितनी वस्ती गाय की होती है, उतनी मनुष्य की नहीं । गायों के आने से घर भरा-भरा लगने लगा । कहीं कड़वी कट रही हैं, कहीं कड़वी के पूले जमा हैं, कहीं बिनीला और दाना भोग रहा है । घर में बहुत-सा सामान ही नहीं आया, नयी-नयी ध्वनियाँ भी आयीं । सूरज निकलने से पहले माँ का दूध विलौना, रई की घरघराहट और दही का छाछ बनकर माट में कोलाहल करना, पिताजी या बड़े भाई का भोर होते ही हूँ, हूँ के साथ निश्चित ताल पर गँड़ासा चलाना और कड़वी काटते समय गँड़ासे का छपछप करना, दूध दुहते समय घई-घई की मनोरम ध्वनि ।

घर भर को काम मिल गया था । सभी लोग गायों का कुछ-न-कुछ काम करते थे । हम लोग गाय-बछड़ों को खेत पर पानी पिला लाते, गायों को खेत में छोड़ आते, बछड़े खेत में जाते नहीं थे, हम दोनों भाई अवकाश के समय दोनों बछड़ों को खेत ले जाते । उनके साथ हम दौड़ते । दूध दुहते समय हम लोग बछड़ों को बड़े चाव से खोलते-बाँधते । उस समय गाय और बछड़ों की विकलता देखने लायक होती थी । गाय का बार-बार बछड़े की ओर निहार कर छटपटाना । रस्सी मुश्किल से खुलती थी, इटके लगते थे, उनकी उछल-कूद के कारण । जेबड़ा खुलते ही एक छलांग में अन्तर पार करके स्तनों से दूध पीने लगते । जब गाय पावस आती तो बछड़ों को हटाकर बाँधना पड़ता था । उस समय मुश्किल से ही उन्हें खूंटों तक लाया जा सकता था ।

थान साफ करने में हम लोग विशेष मेहनत करते थे । कहीं गोबर न पड़ा रहे, गोमूत्र से भीगी मिट्टी कहीं न रहे, इसकी चिन्ता रहती थी । दूसरे तीसरे

दिन पुरानी मिट्टी हटाकर उसकी जगह नयी मिट्टी बिछाते । आठ-दस रेत की परातें गाँव के गोहरे से लाते, फिर चारों तरफ समतल करते । उस पर हमारे गाय-बछड़ों को जो आराम मिलता था वह क्या किसी राजा-रईस को मखमल की सेज पर मिल सकता था ?

धीरे-धीरे जाड़े के दिन आये । दीवाली के दूसरे दिन गोवर्द्धन-उत्सव पर हमारे घर बड़ा आनन्द रहा । गायों के शृंगार के लिए हम लोग डेढ़-दो महीने से मोरपंख चुन रहे थे । इन्हीं दिनों मोर अपने पंख छोड़ता है । हमारे घर के नीम पर एक मोर बहुत जमाने से रहता है । सुबह हम लोग मोर पंख खोजते, लेकिन मोर न जाने अपनी पाँखें कहाँ छोड़ आता था । हम लोग मोर की ताक में रहत, पंखों की तरफ टकटकी लगाते, ऐसा लगता वह चँदौआ अभी गिरेगा, लेकिन घंटेभर की प्रतीक्षा के बाद भी चँदौआ अटका रहता । मोर से हमारी प्रार्थना होती, मोर देवता, पंख दे, लेकिन मोर हमारी प्रार्थना नहीं सुनता था । हमलोग प्रातःकाल ही गाँव से जंगल को जाते तो किसी दिन घीस-तीस पाँखें बटोर लाते । कोई दूसरा लड़का न पहुँचे इसके लिए मैं जल्दी ही चला जाता । हमें धीरे-धीरे पता चल गया कि मोर खुले मैदानों में पंख न छोड़ कर कँटीली झाड़ियों या काँटेदार बाड़ों पर पंख डालता है, जहाँ आदमी की दृष्टि न पड़े । फिर तो हमलोग सीधे उन स्थानों से पंख चुन कर लाते । पंखों के लिए गाँव की ऊँची से ऊँची पहाड़ी की चोटी पर चढ़े, प्राण खतरे में डाले । घरवालों की गालियाँ सुनकर छप्पर की छानपर भी चढ़ जाते और पंख बटोरते । कटार और सेल की वजाय चँदौबे ज्यादा काम आते थे । चँदौबे अलग काट लिये जाते । पंखे के एक तरफ की सफेद चीरी उधेड़ कर अलग करली जाती । पंख-दण्ड के अन्दर का गूदा कभी-कभी कान के छेदने में पहिनाया जाता । सफेद चीरी से गूँथकर माँ ने चार सुन्दर हार बनाये, चँदौओं से मुकुट बने । गर्मी में जानवरों के रोम झड़ जाते हैं, जाड़ों में रोम घने और बड़े होजाते हैं । इन दिनों गाय-भैंसें वैसे ही सुन्दर लगती हैं । गायों को अच्छी तरह साफ करके हल्दी-मेंहदी और रोली से रंगा गया । एक ओर भगवान् कृष्ण खड़े बाँसुरी बजा रहे थे, दूसरी तरफ मटकी से मक्खन खा रहे थे । चित्रों में केवल

रेखाएँ थीं और रेखाओं के कारण ही भाव उत्पन्न हुए थे। मोरपंख और मयूर-हार का शृंगार पाकर गाय-बछड़ों का सौन्दर्य निखर उठा था। नजर दूर करने के लिए दोनों गायों के गले में आँगी बाँधी गयी। उस दिन गोवर्द्धन-दलन हमारे बछड़ों ने किया। दूसरे का बछड़ा माँग कर नहीं लाया गया। उस दिन हमलोगों ने भोजन करने से पहले गायों को भोग लगाया।

इन दिनों गाय-बछड़े चौक में न बँधकर छप्पर में बँधने लगे थे। एक तो जाड़ा पड़ने लगा था, दूसरे चोरों का भय था। उस साल कार्तिक की फसल अच्छी नहीं हुई थी। हमारी बाखल में तीन छप्पर ही थे। एक में पुराना सामान था, दूसरे में रसोई होती थी। रसोई के छप्पर में किवाड़ नहीं थे। जाड़े के दिनों में हमलोग जिस छप्पर में सोते थे, उसी के आधे भाग में खूँटे गाड़ कर गाय का थान बना, आधे छप्पर में हमलोग सोते थे। मिट्टी के तेल की जलनेवाली धुएँदार डिब्बी के मन्द प्रकाश से हम उन चारों प्राणियों को निहारते, जो हमारे मानव वंश के अंश बन चुके थे। कुछ रात गये चारों बैठ जाते और कान हिलाकर जुगाली करते। जुगाली की आवाज स्पष्ट सुनाई देती। जाड़े के दिनों में ध्वनि वैसे ही कुछ साफ सुनाई देती है। हमलोग गाय-बछड़ों की माँग भी सुन सकते थे। उस नये साहचर्य से जाड़े के उन दिनों में हमें विशेष प्रकार की गर्मी का अनुभव होता था। रात गये जब हमलोग पूर पर से आग ताप कर लोटतेतो दस-पाँच मिनट गाय-बछड़ों को सहलाते। हमारे स्पर्श को वे चारों प्राणी कितने श्रद्धा-प्रेम से स्वीकार करते थे।

दोनों बछड़ों को प्यार करते समय माँ प्रायः कहा करती—“दोनों बछड़े बँल वनेंगे और रामू-शामू को बहली में बैठाकर रोज गढ़ ले जाया करेंगे।”

गढ़ में हाईस्कूल था। माँ उसी हाईस्कूल में हम दोनों भाइयों को पढ़ाने की बात सोचती थी। लेकिन न तो हम लोग हाईस्कूल में पढ़ने गये और न बछड़े बँल बनकर हमारी गाड़ी में जुते।

(४)

दोनों बछड़े बड़े होते जा रहे थे। बछड़ों का गाय से प्यार कम हो रहा था, लेकिन हमसे उनका वैसा ही लगाव था। उनकी नाक में रास नहीं

पड़ी थी। गले की रस्मी ही से काम चल रहा था। रंग के आधार पर एक बछड़े का नाम नीला पड़ा और दूसरे का गोरा। मैं अपने बछड़े को मलखान कहता, छोटा भाई मेरी देखादेखी अपने बछड़े को ऊदल कहकर पुकारता। मलखान और ऊदल अपने-अपने नामों से परिचित हो गए थे। जब इन नामों से उन्हें पुकारा जाता तो दोनों झाँककर देखने लगते। हम लोग पाठशाला से घर लौटते तो दोनों 'वाँ-वाँ' करके उछलने लगते। दोनों बछड़े बँधे-बँधे थक जाते थे और हमलोगों से आशा रखते थे कि उन्हें कुछ देर जंगल में ले जाया जाय।

गायों ने दूध देना बन्द-सा कर दिया था। हमारे घरवाले गायों की उतर्ना आवश्यक नहीं करते थे। खली-बिनीला-दाना बन्द हो गये। खेत में जो कड़वी पीली पड़ गई थी वही उन्हें डाली जाती। कड़वी के साथ घास ज्यादा रहती। सूखी घास और पीली सूखी कड़वी स्वाद नहीं लगती थी, लेकिन इसी पर उनका गुजारा चलता। बछड़े पर विशेष ध्यान दिया जाने लगा। उन्हें ज्वार-गाजर खिलाई जाती। घरवालों के इस वर्तव से हमलोग दुःखी थे, किन्तु कर क्या सकते थे। हम लोगों ने इस बात की पूरी कोशिश की कि हमारे व्यवहार में कोई अन्तर न आए। हमारे प्यार में कुछ वृद्धि ही हुई। हमलोग चोरी-छिपके गायों को ज्वार-गाजरे के भुट्टे-वाल और रोटियाँ खिला जाते।

लेकिन गायें हमारा प्यार ग्रहण करने के लिए अधिक दिन नहीं रहीं। प्रति सप्ताह घी लेकर भी सेठजी के रूपय नहीं उतरे थे। न जाने क्या गोल-गप्पा हुआ। एक दिन सेठ के आदमी दोनों गायों को खोल कर ले गये। पिताजी को बाहर किसी शहर में कमाने के लिए जाना पड़ा। बड़े भाई भी उन्हीं के साथ गये। घर में तंगी से काम चलने लगा। माँ चिन्ता से उदास रहतीं। हमलोगों की समझ में कुछ आता नहीं था। गाय और पिताजी के जाने से हमारा घर सूना-सूना लगने लगा था। अब केवल दो बछड़े रह गये थे। हमने अपना पूरा प्यार उन दोनों पर लुटा दिया। बछड़े भी हम लोगों से खूब हिले थे। हम लोग अपने अवकाश का समय उन्हीं दोनों पर खर्च करते। किन्तु एक कठिनाई थी। बछड़े जिस तेजी से बड़े हो रहे थे हम उस तेजी का साथ नहीं दे सकते

थे । मानव वंश का बालक शक्ति और विकास में पशु वंश का साथ नहीं दे सकता । देखते-देखते दोनों बछड़े ब्रैड बनने लगे । हम दोनों भाई उनके सामने नगण्य थे । अब हम उनके साथ धृष्टता नहीं करते थे । डर लगता, कहीं मार न बैठें । इस भय ने हमारे और बछड़ों के बीच भेद की दीवार खड़ी कर दी ।

(५)

एक दिन एक अवाञ्छनीय घटना घटित हुई । गर्मी आ गई थी । बछड़ों की आयु बारह महाने से कुछ अधिक थी । सोंगों की जगह कुछ उभार आ गया था और कोई काठो गाँठ-गो चोंच बनने लगी थी—बाओं में से । पिताजी की अनुस्थिति में माँ का काम बड़ गया था । बाहरी कामों में मुझे ही आना-जाना पड़ता था । विवाह-शादियों और विरादरी के कामों में अपने घर का प्रतिनिधित्व मुझे ही करना पड़ना था । खलिहान से नाज आ गया था । मूंग-चने का भूसा वहीं पड़ा था । माँ भूसा लाने गई थी । दोनों भाई पाठशाला गये थे । पाँछे से बछड़ों ने एकान्त पाया तो रस्सों के साथ जोर आजमाई करने लगे । अन्त में रस्सा टूट गया और दोनों जंगल की तरफ निकल गये । माँ घर लौटीं तो बछड़े गायब । माँ ने भूसे की रोड चौक में पटकी और खोज देखती बछड़ों के ठिए निकल गई । जब हफलोंग लौटे तो पूरा किस्सा सुना । मैंने छोटे भाई को वहीं छोड़ा और चल दिया बछड़ों की खोजने । गाँव से कुछ दूर पहाड़ी थी, उसी तरफ चला । उस साठ हम दोनों भाई जूती नहीं पहन सके थे । मैं नंगे पाँव था । खोजते-खोजते दोपहर हो गया । सूरज आकाश के बीचोबीच तप रहा था, लू तो नहीं चलने लगी थी, लेकिन धरती गरम थी । काँटेदार बेर की झाड़ियाँ और खेतों की घाड़ ने पाँशों का हाल बेहाल कर रखा था । जमीन पर पाँव पड़ते ही पाँव का भुर्ता बन रहा था । तलवे किसी तरह मिट्टी पर टिक नहीं रहे थे । कुछ आँसूओं के बल भरे, कुछ एड़ियों के और कुछ इधर उधर से उठा । लेकिन इस तरह काम कब तक चलता । अन्त में मैंने अपनी धोती का एक पल्ला खोला, उससे दोनों तलवे बाँध, बीच में अन्तर दे दिया । इस उपाय से पाँव का जलना बन्द हो गया लेकिन डग भरना मुश्किल हो गया । उसी समय पहाड़ की तलहटी में दोनों बछड़े चरते दिखाई

दिये । उन्हें देखते ही मेरे क्रोध का ठिकाना नहीं रहा । क्या करता, यदि मैं उनपर क्रोध उतारता तो वे दूर भाग सकते थे । मैं आड़ लेकर धीरे-धीरे बढ़ा । दो-तीन कंकड़ हाथ में लिये और पहाड़ की तरफ जाकर मैंने हाँक लगाई । दोनों बछड़े मुझे देख गाँव की तरफ न चले, दाहिनी ओर छलाँगें मारने लगे । मैं उनके पीछे हो लिया । पाँव में धोती खुल गई थी । उस उछल-कूद में मुझे तन-मन की सुख न रही । मैं बेतहाशा दौड़ रहा था । कभी मलखान को पुकारता और कभी ऊदल को, लेकिन दोनों में से कोई एक भी मेरी तरफ नहीं देख रहा था । उन दोनों ने पड़िली वार स्वतंत्रता का परिचय पाया था और वे उसका पूरा-पूरा लाभ उठाना चाहते थे । मैं पसीने में सराबोर था । साँस फूल आया । मारे प्यास के कंठ सूख गया, ओठों पर पपड़ी जम गई । किन्तु इस पर भी मैं पीछा कर रहा था । रुका नहीं । बछड़े इधर-उधर जहाँ जो चाहता दायें-बायें हो रहे थे । कभी-कभी टीलों में छिपकर अदृश्य हो जाते ।

लगभग दो बजे, डेढ़-दो घण्टों की दौड़ के बाद उन दुष्टों को मुझपर दया आई या न जाने क्यों दोनों सीधे घर की तरफ चल दिये । मैं जब घर पहुँचा तो माँ पीली में मेरी राह देख रही थी । मेरा हाल देख माँ के गुस्से का ठिकाना न रहा । वे स्वयं थककर लौटी थीं । उन्होंने चुपचाप दोनों बछड़ों को बाँधा और फिर लाठी से जो उन्हें धुनकाने लगीं तो मेरा कलेजा अधर हो गया । मारते-मारते माँ का साँस भर आया । बछड़ों ने चूँ नहीं की । न उछले—न कूदे । खड़े-खड़े पिटते रहे । अन्त में जब लाठी टूट गई तो माँ का हाथ रुका । मैंने कुछ नहीं कहा । बछड़ों पर मेरा क्रोध भी कम नहीं था ।

उस दिन, दिनभर किसी ने बछड़ों को दाना-दुनका नहीं डाला । सन्ध्या होने पर मैंने चुपके से कुछ चारा डाल दिया था ।

माँ दिनभर गुमसुम रहीं । हम दोनों भाइयों से भी नहीं बोलीं । शाम को जल्दी भोजन कर, दीपक बुझा सो गई ।

सुबह माँ ने मुझे जल्दी जगाया । बोलीं—“इसी समय दोनों बछड़ों को ले जा गढ़ के मेले में । वहाँ जानवरों का मेला भर रहा है, जिस भाव बिकें, बेच आना ।

माँ ने मेरे पल्ले दो बासी रोटियाँ बाँध दीं। कुछ अचार रख दिया। मैंने अपने एक दोस्त को साथ चलने के लिए बुलाया। हम दोनों अपने बछड़ों की रास पकड़ उन्हें बेचने चले—उसी मेले में जिससे पिताजी एक साल पहले उन्हें खरीद लाये थे। जाते समय मुझे किसी प्रकार का खेद या चिन्ता नहीं थी। बछड़े चुपचाप आगे चल रहे थे। मैं अपने दोस्त से गप्पें मार रहा था। मार्ग के दोनों ओर नीम-चमेली के ऊँचे-ऊँचे पेड़ थे। अभी धूप तेज नहीं हुई थी।

इससे पहिले मैंने आदमियों का मेला देखा था, जानवरों के मेले में आने का यह प्रथम अवसर था; और वह भी व्यापारी बनकर। जिसे जहाँ जगह मिली वहीं अपने जानवर लेकर बैठ गये। हम तक ग्राहक कम हो पहुँचते थे। जो कोई आता, बछड़े के दाँत देखता, सींगों की जगह टटोलता, पूँछ उठाता, भौंरो गिनता, खुरों पर निगाह डालता और फिर कोमत पूछता। हमारे बछड़े अच्छी नसल के थे, उनकी चराई अच्छी हुई थी और फिर वे तो हमारी बदली में जुतनेवाले थे। मैंने उन्हें हल चलाने के लिए थोड़े ही पाला था। लोग पसन्द करते थे लेकिन हमसे मोल-तोड़ होता नहीं था। हमलोग दगालों के चक्कर में नहीं पड़े। जो आता पूछता क्या लेगा? मैं जवाब देता तुम्हीं कहो क्या दोगे? खरीदार सभी किसान थे। कोई-कोई मजाक कर देता जिससे मैं झेंप जाता था। दोपहर हुई। धूप में तपते रहे। कोई ठिकाने को कोमत लगाता नहीं था। कोई जोड़ी के तीस लगा कर चला गया, कोई चालीस। चालीस से आगे कोई नहीं बढ़ा। मेरे लिए तीस-चालीस का अन्तर समझने योग्य नहीं था; किन्तु मित्र कहता था जोड़ी के ज्यादा रुपये उठने चाहिए। उधर माँ ने कह रखा था जो कीमत लगे बेव आना। दोनों में से एक को भी वापस नहीं लाना।

हमने अपनी पोटली खोलकर एक-एक रोटो खाई। बारो-बारी से प्याउ पर पानी पी आए। दिन ढला, अन्त में एक आदमी आया और सौदा बयालीस रूपयों में तय हुआ।

जानवर बिक जाता है किन्तु उसके बाँधने की रस्सी नहीं बेची जाती। जानवर को खरीदार अपनी रस्सी से बाँधता है। मैंने बयालीस रुपये गिने,

परखे और फिर धोती के एक कोने में बाँध अंटी में खोस लिये । गले से रस्सी खोल ली और दोनों बछड़े खरीदार को सौंप दिये । खरीदार ने हमारे मलखान और ऊदल के गले में रस्सी बाँध कर हाँक लगाई । उस समय तक मुझमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ । चलते समय पहले तो बछड़े जमे रहे लेकिन अनुभवी ललकार सुन चुपचाप चल दिये । जाते समय दोनों ने मुझे जिस कष्ट दृष्टि से देखा, मैं कह नहीं सकता । एक वर्ष बाद वे हमसे बिछुड़ रहे थे । उनकी आँखों में वही भाव छलक रहा था जो पीहर से पहली बार विदा होते समय लड़की की आँखों में होता है । मैं अपने को नहीं रोक सका । मैंने दोनों के गले से लिपट कर प्यार किया । मैं पुचकारता जाता और रोता जाता । अन्त में नया मालिक उन्हें ले गया । जब तक दोनों अदृश्य नहीं हो गए मैं उसी ओर टकटकी लगाये रहा ।

वर्ष भर तक हमारे घर के प्यार और परिश्रम से पले हुए दो प्राणी अब दूसरे के हो चुके थे और इस प्यार और परिश्रम का समग्र मूल्य, दो मांसल प्राणियों की पूरी कीमत थी केवल बयालीस रुपये ।

घर का रास्ता किस तरह कटा; मैं ही जानता हूँ । मुँह से एक अक्षर नहीं निकला ! बछड़ों से रस्से हलके लग रहे थे । बीच बीच में अनुभव होता जैसे रस्सों में झटका लगा है और बछड़े खींच रहे हैं ।

आँसू सूख चुके थे लेकिन राह भर मेरी सिसकियाँ नहीं रुकी थीं ।

घर पहुँचकर मैंने माँ के सामने चुपचाप बयालीस रुपये और रस्सियाँ रख दीं । माँ की निगाह एक बार थान पर और दूसरी बार रुपयों पर गई और फिर फूट-फूट कर रोने लगीं ।

आँसू रोके न रुके ।

पता नहीं आज वे बछड़े कहाँ होंगे ? हैं भी या नहीं ? होंगे तब भी वे बछड़े नहीं रहे होंगे । बड़े बँल बन गये होंगे ? लेकिन मेरी स्मृति में आज भी वे मलखान और ऊदल हैं, मात्र वर्षभर के बछड़े और उनकी याद कुछ क्षणों के लिए कभी-कभी मन को व्यथित कर देती है ।

कलाकार

“मैं आपके निरीक्षण में चित्रकला का अभ्यास करना चाहती हूँ, कलाकार ! मेरी प्रार्थना को आप सदैव टालते आए हैं। अनुमति मिले तो अपना सौभाग्य समझूंगी।”

कमला ने कलाकार के निकट विनीत स्वर में अनुनय किया।

“कमला तुम हो ? चितेरी बनना चाहती हो तुम ?”

कलाकार ने चित्र-पटल पर अंकित नारी की दाहिनी भौंह को परिष्कृत करते हुए आश्चर्य-सा व्यक्त किया। तूलिका रुकी नहीं। वह जानता था, कमला ही होगी। कमला की विनय नयी नहीं थी। कलाकार के प्रश्न में पहली बार आश्चर्य की ध्वनि थी।

“मैं कला की अधिकारिणी सिद्ध नहीं हूँगी ?”

“मैंने तुम्हारा अनधिकार तो प्रमाणित नहीं किया ?”

“आपके आश्चर्य का कोई दूसरा अर्थ भी हो सकता है ?”

“आश्चर्य इसलिए नहीं कि तुम कला की अधिकारिणी नहीं हो।”

दक्षिण भृकुटि का परिष्करण समाप्त हो चुका था। भौंह अपनी उज्ज्वल कृष्णता से कलाकार के मन में सन्तोष उत्पन्न कर रही थी। उसने तूलिका स्वच्छ जल में धोकर फलक पर रख दी। कमला की ओर मुँह करके उसने कहा:

“आश्चर्य का कारण भी सुनो। तुम स्वयं महान् कलाकार की अनुपम कृति हो। भूतल का श्रेष्ठतम चित्रकार तुम्हें अपनी कला का उपकरण बना कर कृतार्थ हो सकता है। यदि स्वयं कला, कला की उपासना करने चले तो क्या दर्शक को आश्चर्य नहीं होगा ?”

उत्तर उसके मन में कई दिनों से चक्कर लगा रहा था। आज अनायास प्रकट हो गया।

कमला उत्तर क्या दे ? इस उत्तर से अकस्मात् उसे अपनी चेतना रुद्ध होती दिखाई दी। जड़ता ने जैसे समस्त इन्द्रियों को जकड़ लिया है और उस पृथ्वी से ही उसका सम्बन्ध टूट गया है, जिस पर वह अविचल बैठी है। उसने

अपने मुख पर कलाकार के प्रखर नेत्रों का स्पर्श अनुभव किया। वह सिहर उठी एक विचित्र प्रकार के रोमांच से। उसके कपोलों पर हलकी-सी लालिमा दौड़ गयी। मुख का गौर वर्ण अधिक आकर्षक हो गया।

“और यह देखो, अधिकांश चित्रकारों और कलाकारों का बाह्य सुन्दर नहीं होता। वे अपने इस जन्मजात अभाव की पूर्ति करते हैं, अपने मानस के सौंदर्य से। प्रकृति और मानव और अन्य प्राणियों में जो शिव है, जो सुन्दर है, वे उसी से अपने अन्तराल को भर लेने का प्रयत्न करते हैं। जहाँ जितना अभाव है, पूरक सामग्री वहाँ उतनी ही समाती है। क्या तुम अपने में ऐसा कोई अभाव पाती हो?”

कमला निरुत्तर ही रही। नेत्र झुकाये स्तब्ध बैठी थी वह। उससे ऊपर देखा नहीं गया।

“चुप हो तुम? क्या कला की जिज्ञासा शान्त हो गई, इतने ही से? क्या तुम यथार्थ में कला की आराधना करना चाहती हो?”

“कला जीवन का साध्य न बन जाती, तो मैं आपसे इतनी बार असफल प्रार्थनाएँ क्यों करती?”

वह अधिक न बोल सकी।

“तब तुम्हें मेरे शिष्यत्व का अधिकार आज से प्राप्त हुआ।”

×

×

×

वह परिचितों में कलाकार नाम से प्रसिद्धि था। आयु छव्वीस-सत्ताईस वर्ष रही होगी। दुबला-पतला, छरहरा वदन, कुछ लम्बा-सा कद, रंग साँवला, आँखें बड़ी किन्तु पुतलियाँ दो विरुद्ध दिशाओं में जाकर मुख की अपरूपता बढ़ा देती थी। सुन्दरता के लिए केवल दाँतों का नाम लिया जा सकता था। जब वह मुस्कराता तब उसकी श्वेत, शुभ्र, दंत-पंक्ति मुख की कालिमा में इस तरह दमक जाती, जैसे काले पत्थर के कूंडे में दही चमकता है। सिर पर बिना किसी प्रयत्न के केश-राशि बढ़ गयी थी अस्त-व्यस्त-सी। अस्त-व्यस्तता और सादगी के कारण अपने आप कुछ आकर्षण उत्पन्न हो गया था।

उसे बचपन से चित्रकारी में रुचि थी। उसके अध्यापक ने उसकी प्रतिभा का परिचय पा उसे बम्बई के कला विद्यालय में भिजवाया था और वहाँ थोड़े से प्रयत्न के बाद उसकी प्रतिभा चमक निकली। गत चार वर्षों से कमला के घर में रहता था। चित्र-कला में उत्तरोत्तर सफलता मिलती ही गई। अनेक प्रदर्शनियों में उसके चित्रों पर प्रथम पुरस्कार मिले थे। कला के क्षेत्र में एक विशिष्ट शैली का अवतरण हो रहा था उसके द्वारा और उससे बड़ी-बड़ी आशाएँ की जाती थीं। कलाकार अपनी कला को सुख का साधन नहीं मानता था। देश, संस्कृति और इससे अधिक विश्वम्भर के सौंदर्य को व्यक्त करने के लिए उसने कला को माध्यम के रूप में अपनाया था।

कमला थी सत्रह वर्ष की सुन्दर और स्वस्थ। मञ्जला कढ़, गौर-वर्ण, सुन्दर आकृति, इन सब विशेषताओं के साथ यौवन की मादकता और उच्च कुल की शालीनता से वह अधिक मनोहर लगती थी। छोटे बाजों को अंग्रेजी ढंग से सँवार कर वह पीछे का ओर फँसा लेती थी। वेश-भूषा में पार्श्वार्थ रंग था, किन्तु हाव-भाव और आचरण में उसे भारत की परंपरा से अनुराग था। उसके भोलेपन में यौवन की चंचलता खो-सी गई थी।

आठ के पन्द्रह वर्ष में उसने मैट्रिक परीक्षा पास की। जब वह मैट्रिक में थी, कलाकार उनके घर में आया। घर बड़ा था, तीन-चार और थे, कला में रुचि रखने से कमला के पिता ने उसे अपने घर के बाहरी भाग में एक कमरा दे दिया था।

घर में कमला को लाड़-प्यार, सुख-स्नेह सब कुछ प्राप्त था, किन्तु उन दिनों उसे अपने में कुछ रिक्तता अनुभव होने लगी। रिक्तता की अनुभूति तीव्र होती गई। कलाकार की कृति और उसके चित्रांकण को देख उसे संतोष मिलता। समय बिताने और जो बहलाव के लिए वह उस कक्ष में चली जाती। कलाकार को ज्ञात न होता, वह कब आई और कब गई। वह योगी की भाँति, संसार के समस्त आकर्षणों से दूर, मुक्तात्मा के समान अपनी साधना में लीन रहता, उसे तन-मन की सुध भी नहीं रहती। कमला की उत्सुकता चित्रों की

अपेक्षा कलाकार की तन्मयता में अधिक थी। उसकी चेतना इतनी विकल हो उठती कि वह किसी कार्य में अपने को विलीन कर देना चाहती। कलाकार के चित्र उसे सान्त्वना देते। और मैट्रिक पास करने के बाद उसने कालेज में नाम न लिखाकर कला विद्यालय में नाम लिखाया।

एक डेढ़ साल तक विद्यालय में अभ्यास करने पर वह आकृतियाँ व्यक्त करने लगी थी। रेखा और रंग का शास्त्रीय ज्ञान भी थोड़ा-बहुत हो गया था। फिर भी उसने अनुभव किया विद्यालय के अध्यापकों से सीखी हुई कला निश्चित रेखाओं की बन्दिनी है। उसने कलाकार के कक्ष में कला को मुक्त उड़ान भरते देखा था। नियमों में बँधी कला अपने पर फड़फड़ाकर रह जाती थी, वह अपना अस्तित्व खो देती थी। इसलिए कमला ने कई बार कलाकार से प्रार्थना की थी।

×

×

×

दूसरे दिन कमला संपूर्ण उपकरणों के साथ कलाकार के कक्ष में पहुँची। राजस्थानी, कांगड़ा, मुगल, आधुनिक बंगला तथा पाश्चात्य शैली के चित्र-संग्रह थे। रंग-विरंगे छोट-बड़े, कई आकार के कागजी गत्ते के टुकड़े थे, कई प्रकार की तूलिकाएँ कुछ हाथी दाँत की, कुछ चाँदी की और कुछ सोर्वा-सादी। भाँति भाँति के रंग।

“इन सब का क्या बनेगा, कमला? इतना भार देख कर बेचारी कला डर से भाग न जायगी?”

“क्या इस सामग्री की आवश्यकता नहीं है? विविध शैलियों के चित्रों में कौन रंग कितनी मात्रा में प्रयुक्त हुआ है, इसके मापने के लिए कार्ड बोर्ड के टुकड़े बड़े सहायक होते हैं। समान वर्ण के टुकड़ों की सहायता से सरलतापूर्वक जान जाती हूँ कि वह रंग कितनी मात्रा में प्रयुक्त हुआ है। इनमें से एक चीज भी निरर्थक नहीं।”

“अनुकरणशीलता ने कभी मौलिक प्रतिभा का विकास नहीं किया, कमला। तूलिका और रंग-पात्रों के अतिरिक्त दूसरी चीजों का बहुत कम महत्त्व है। स्वस्थ मन से बैठ जाओ। तूलिका पास रख लो, सामने चित्र-पटल हो। मन

किसी सुन्दरतम वस्तु पर एकाग्र करो। यह ध्यान में रहे, तुम उसी कल्पना को मूर्त कर सकोगी जो तुम्हारे अन्तस्तल के अन्तर्भाग में समा चुकी हो, जिसने तुम्हारे हृदय को पूर्णतया अभिभूत कर लिया हो, जो व्यक्त हुए बिना तुम्हें चुप नहीं बैठने देती, तुम्हें सोने नहीं देती। फिर चाहे वह पत्थर का टुकड़ा हो या हीरे की कनी, उच्च अट्टालिकाओं और महलों की अलंकृत राज-राजेश्वरी हो या किसी फटेहाल मजदूर की हृदयेश्वरी अथवा चिथड़ों में लिपटी अभाव की प्रतिमूर्ति भिखारिन। जब तुम अपने मन को उसमें लीन कर दोगी, वह तुम्हारी तूलिका से व्यक्त हो जायगी। उसमें तुम्हारे प्राणों का स्पन्दन होगा और होगी तुम्हारे रक्त की उष्णता और आवेश की अभिव्यक्ति। इतना पाठ आज के लिए पर्याप्त होगा। सीखने का प्रयास करो।”

कई दिन बीत गए। नए ढंग की कला-साधना में सफलता प्राप्त हुई। कमला स्वयं अंकन करने लगी। कलाकार के चित्रों का सूक्ष्मता से निरीक्षण करती।

कुल मास बाद उसने अनुभव किया, कलाकार के चित्रों की मौलिकता जैसे कहीं अटक गई है। भिन्न-भिन्न दृश्यों में समानता दिखाई देती, हिमाच्छादित कैलाश और अतल-तल वाले क्षुब्ध सागर के चित्रण में अद्भुत समता झलकने लगी। नारी के जो चित्र अब अंकित हो रहे थे, उन विविध आयु, वर्ण, वेश-भूषा युक्त नारियों के विभिन्न परिधानों और अलंकारों में से उसे एक ही हृदय साँकता दिखाई दिया। कमला को आभास हुआ, जैसे उसका हृदय ही उन सब में प्रतिबिम्बित हो रहा है और इस आभास मात्र से ही उसने अपने हृदय में अनेक बार कंपन-सा अनुभव किया। कलाकार के सम्मुख विचार उपस्थित करने पर उसे उत्तर मिला—

“हमारे अनुभव में बहुत-सी चीजें आती हैं। हम अधिकांश वस्तुओं को भुला भी देते हैं। कभी हमारी इन्द्रियाँ ऐसे विषय का साक्षात्कार करती हैं कि वह हमारे अंतस्तल में समा जाती है। हमारा चेतन और चेतन से अधिक अवचेतन मस्तिष्क उस वस्तु से इतना अभिभूत हो जाता है कि अनेक प्रतिच्छायाओं के प्रविष्ट होने पर भी वह अनजाने उस एक वस्तु के चारों ओर गति-

शील रहता है। हमारा मन अज्ञात रूप से उसके घेरे में बँध जाता है और वह किसी दूसरी वस्तु की ओर प्रयत्न करने पर भी अग्रसर नहीं होता। अनायास वह ग्रहीत वस्तु कृतियों में व्यक्त होती रहती है और व्यक्त होकर भी हमें प्रतीत होता है, जैसे उसका बहुत बड़ा अंश अन्दर ही बच गया है और अव्यक्त रहकर दूसरे दृश्यों को भी वह उभरने में रोकता रहता है। क्या काव्य में, क्या चित्रकारी में और क्या नृत्य कला में और क्या संगीत में इस नियम की अनुवृत्ति स्पष्ट दिखाई देगी।”

कमला सम्पूर्ण अर्थ को ग्रहण न कर सकी।

×

×

×

गर्मी के दिन थे। संध्या को कुछ बादल हो आये थे। उमस-सी थी। कमला ने इस समय एक चित्र पूरा किया। उसने कोने में अपना नाम लिखा और संतोष तथा गर्व का पुट मिलाकर उच्चारण किया।

“यह कृति आपकी सेवा में समर्पित है। अब तक मेरी रचनाओं में मझे यह चित्र श्रेष्ठ लगता है।”

“हाँ, चित्रग बुरा नहीं है। रही अच्छी लगने की बात, रचियता को अपनी प्रत्येक नवीन रचना से संतोष ही मिलता है। यदि वह स्वयं ऐसा न समझे तो कुछ नवीन बना ही नहीं सकेगा और अपनी पुरानी रचनाओं से संतोष मान बैठेगा। प्रत्येक नई रचना अपने नयेपन से रचियता को अपनी उत्तमता की ओर आकर्षित करती है। इस चित्र में तुमने अबोध बाला, चौदह पन्द्रह वर्ष की लड़की का चित्र खींचा है। चित्र के उच्च मार्ग पर वृद्धा की छाया-सी अंकित करो जो क्षितिज में लीन होना चाहती हो।”

“तब चित्र की शोभा ही नष्ट हो जायगी। पूरे वातावरण में विषाद छा जायगा।”

“नहीं, इस षोड़शी वाला का सौंदर्य अधिक खिल उठेगा। कलाकार सृष्टि के दो विपरीत तत्वों को एक स्थान पर प्रस्तुत करके तुलनात्मक दृष्टि से अपनी अभीष्ट वस्तु का सौंदर्य दर्शक के मन में अंकित कर देता है।”

सूर्य अस्त हो रहा था। पश्चिमी क्षितिज से बादलों से कुछ तिरछी होकर आने वाली सुनहरी किरणों में आसपास का सारा वातावरण रंगीन हो गया था।

“आपका आदेश स्वीकार है। मेरी भेंट आपने इस संशोधन के साथ स्वीकार कर ली न?”

“हाँ, धन्यवाद के साथ।”

कमला के मुख पर संतोष की आभा दौड़ गयी। उसका प्रयत्न सफल हो गया। संध्या के स्वर्णिम प्रकाश में उसके गौर मुख को आभा अद्भुत रूप से आकर्षक लग रही थी। कलाकार उसके मुख को ओर एकटक देखता रहा, देखता ही रहा। कुछ देर बाद उसने कहा

“कमला, मैं तुमसे एक प्रार्थना करना चाहता हूँ।”

“प्रार्थन हो क्यों, आप आदेश देने के अधिकारी हैं।”

“प्रार्थना नहीं, आदेश हो सही। मैं तुम्हारा चित्र बनाना चाहता हूँ।”

“मेरा सौभाग्य। किन्तु इस अकिंचन पर अपना अमूल्य समय क्यों लगाते हैं? मेरे कारण आपकी कला गौरवान्वित नहीं होगी।”

“इसकी निर्णायक तुम नहीं हो। कितने दिनों से मेरे हृदय में एक छाया घूम रही है। आज इस सान्ध्य प्रकाश में वह छाया जैसे तुममें साकार हो गई है। पटल पर अंकित होने के लिए वह मुझे विकल बना रही है।”

“तब मुझे आपत्ति नहीं।”

×

×

×

चित्र बनकर तैयार हो गया। परिष्करण समाप्त करते हुए कलाकार ने थोठों में लालिमा लाने के लिए अंतिम बार तूलिका उठाई। उसने अपनी दृष्टि चित्र पर डाली। दूसरे क्षण सारा चित्र आँखों के आगे घूम गया। अंकित प्रतिमा अपने निरावृत हृदय से कलाकार के साथ संलाप कर रही थी। कलाकार के नेत्र चमके। उसने संतोष की साँस ली। आकृति पर मुस्कान दौड़ गई। उसकी आँख की कोर से आँसू की नन्हीं बूँद ढुलक गई। आँसू की तरलता ले उसने एक कोने में अपना नाम लिखा। उसने बार बार चित्र को

निहारा—निकट से, दूर से, दाएँ-बाएँ से, सारी त्रुटियाँ दूर हो चुकी थीं। कलाकार को संतोष था फिर भी उसे लगा, जैसे हृदय में बसा हुआ सौंदर्य पूरी तरह व्यक्त नहीं हुआ है। अभी कुछ शेष है, जो इस फलक पर नहीं आ सका, नहीं आ सका। चित्र पर आवरण डालकर उसने कमला को बुलाया।

जब से चित्र बन रहा था कलाकार के कक्ष में कमला के प्रवेश पर प्रतिबन्ध था।—“कमला, इस चित्र का उद्घाटन तुम्हारे हाथों होगा।”

कलाकार का अनुरोध था।

कमला खड़ी रही। उत्सुकता प्रेरित कर रही थी, उसी क्षण आवरण हटाकर वह अपने चित्र को देख ले; किन्तु साहस नहीं होता था। वह अपनी उत्सुकता दबाये खड़े रही।

“हाँ, आगे बढ़ो, कमला। निरावृत्त करो इस चित्र को।”

“नहीं यह कार्य आपका है।”

“भूलती हो कमला। निर्माता उपभोक्ता नहीं बन सकता। यदि निर्माता उपभोक्ता बनने की लालसा करे तो वह अपने निर्माण का अधिकार खो बैठेगा। मेरा अनुरोध, तुम्हारे गुरु का आग्रह स्वीकार करो।”

कमला जैसे विवश, ठिठकती हुई आगे बढ़ी। धीरे से आवरण हटाकर उसने चित्र देखा। चित्र के पार्श्व-भूमि में कुछ नहीं था। ऊपर उड़ते हुए दो-चार मेघ-खंड अस्तंगत सूर्य की किरणों से दीप्त थे। मुख पर कुछ स्वर्णिम आभा थी। दाहिनी हथेली पर मुँह टेके, बड़ी-बड़ी सुन्दर आँखों से जैसे बोलना ही चाहती है। कमला ने आँखों में अपने आपको इतना स्पष्ट नहीं देखा था। उसने देखा, जैसे उसका रूप अपरिवर्तित अवस्था में उसके सम्मुख साकार हो गया है। यह चित्र यथार्थ है और वह स्वयं जैसे छाया मात्र है।

कमला का मस्तक श्रद्धा से झुक गया। अपने दोनों हाथ जोड़कर वह कलाकार के सम्मुख नत हो गई। अभिवादन के लिए कोई शब्द न निकल सका। नत-नयन कृतज्ञता व्यक्त कर रहे थे। कुछ क्षण बीत गये। उसने कहा—

“यह चित्र मेरे पास रहेगा गुरुदेव।”

“नहीं, कमला, तुम्हें यह नहीं मिलेगा।” कलाकार ने कहा।

“आप अनेक चित्र बना लेंगे। मेरे पास तो यह एक ही रहेगा। यह कितना अनुपम है।”

“मेरे निकट भी यदि यह अनुपम न होता तो मैं तुम्हें इस रूप में अंकित न कर पाता। यथार्थ पर मेरा कोई अधिकार नहीं, यथार्थ का छाया से मैं वंचित न रहूँ। प्रतिच्छाया मेरे संतोष का कारण बने।”

“आप क्या कह रहे हैं?” कमला के स्वर में वेदना थी।

“हाँ, ठीक ही कह रहा हूँ। कोई भूल नहीं कर रहा हूँ। क्या आज तुम बता सकती हो, तुम्हारे जीवन में मेरा क्या स्थान है? मैंने आज तक ज्ञान-दान दिया, उसकी भेंट तुम क्या दोगी?”

“मेरे हृदय में जिन व्यक्तियों ने स्थान बनाया है, उनमें आप का स्थान सर्वोच्च है, गुरुदेव। इतना ऊँचा कि मैं पूर्ण प्रयत्न करके भी आपके चरणों का स्पर्श नहीं कर पाती। मेरे निकट आप उत्तरोत्तर महान बनते चले गये हैं। यदि भाषा हृदय के भाव व्यक्त करने में सक्षम होती तो मैं कहने का साहस कर जाती। विवश हूँ। रही भेंट की बात, मैं अकिञ्चन क्या दूँ? आपको कृपा का मूल्य क्या चुकाऊँ? उसके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने को सामर्थ्य भी नहीं है मुझ में। हृदय में जितनी श्रद्धा है, जितना आदर है, उस सबसे मैं आपकी अर्चना कर सकती हूँ।

“केवल श्रद्धा!” कलाकार ने कहा।

“मेरे पास और है ही क्या गुरुदेव? मुझ पर विश्वास कीजिए।”

×

×

×

दूसरे दिन कमला ने देखा, कलाकार अपने कक्ष में नहीं है। अनेक चित्र, चित्राकण के उपकरण इधर-उधर बिखरे थे। नहीं था कमला का चित्र। कमला स्तब्ध रह गई और सम्भवतः जन्मभर यह स्तब्धता उसका साथ नहीं छोड़ेगी।

और इधर कलाकार केवल कमला के चित्र का अवलम्बन लेकर दूसरे स्थान पर पहुँचा, अब भी भावावेश में वह कभी तूलिका उठाता, कुछ रेखाएँ

खींचता; किन्तु उन रेखाओं में कोई आकृति न होती । कल्पना धुँधली-सी रह जाती । कुहरा हटता नहीं था । वह भूल गया कभी वह चित्रकार था । फेंक दी उसने तूलिका और फोड़ फेंके रंग के पात्र । एकमात्र कमला का चित्र उसके साथ था । वह उस चित्र की ओर देखकर किसी खोई हुई चीज को पाने की चेष्टा करता । किन्तु चित्र केवल रंग और रेखाओं के अतिरिक्त कोई भाव-पूर्ण आकृति प्रकट न करता । चित्र में अपने नाम के अक्षरों को देखकर उसके मस्तिष्क में एक तूफान उठ खड़ा होता, और दूसरे क्षण ही साँय-साँय होने लगती ।

उसे याद आता वह कला का उपामक था । मिट्टि उसके निकट आ गई थी

स्वर्ग और नर्क

कलियुग में और विशेषकर इस बीसवीं सदी में यमराज को अपने स्वभाव में बहुत से परिवर्तन करने पड़े। इस सृष्टि को ब्रह्मे, पुराणों के अनुसार लगभग दो अरब वर्ष हो रहे हैं और इस कलियुग से पहले अट्ठाइस बार सतयुग, अट्ठाइस बार त्रेता, अट्ठाइस बार द्वापर और सत्ताइस बार कलियुग आये और गये, किन्तु इस प्रकार की समस्याएँ उनके सामने कभी उपस्थित नहीं हुई थीं।

बात यह है कि इन सौ वर्षों में नरक में ऐसे-ऐसे व्यक्ति पहुँचने लगे जो वहाँ कभी देखे नहीं गये थे। यमराज और यमदूतों को बड़ी प्रसन्नता हुई थी इन लोगों को देखकर। उनकी प्रसन्नता का कारण यह था कि इस शताब्दि में पहले से ज्यादा लोग उनके राज्य में बसने के लिए पहुँचे थे। नरक जाने वाले लोगों की संख्या इतनी अधिक पहले कभी नहीं थी। इसके अलावा प्रसन्नता का एक दूसरा भी कारण था। नरक में जो लोग इस समय पहुँच रहे थे वे बहुत ही सभ्य और अनुशासन को मानने वाले थे। पहले जो लोग नरक में पहुँचते थे, वे नरक द्वार तक तो क्या वैतरणी के किनारे से ही रोने-चिल्लाने लगते थे। यमदूत उन्हें नाग-फाँसों में फाँसकर घसीटते हुए ले जाते थे। जब चित्रगुप्त उनका लेखा-जोखा देखने लगता तो वे चीख-चीख कर नरक-अधिकारियों के कठोर हृदयों को दहला देते थे। और जब उन्हें दण्ड देने के लिए दंड-स्थल पर भेजा जाता था उस समय के करुण दृश्य को चित्रित करने में गरुड़-पुराण के लेखक व्यासजी भी असमर्थ रहे हैं।

किन्तु इस शताब्दि के लोग हो निराले हैं। यमदूतों को नागफाँस डालना नहीं पड़ता। बड़ी प्रसन्नता से लोग नरक-द्वार में प्रविष्ट होते हैं और नरक के अधिकारियों का बड़ी निर्भयता से अभिवादन करते हैं। क्या मजाल उनके चेहरों पर कभी उदासी देखी जाए। निश्चल और शान्त भाव से पग रखते हैं। छाती तनी रहती है। चित्रगुप्त के सामने बड़ी निर्भयता से जीवन का पूरा वृत्तान्त सुनाते हैं और जब चित्रगुप्त उन्हें दंड सुनाता है तो धन्यवाद कह कर यमदूत के साथ चल देते हैं।

नरक के इन यात्रियों का यह वर्तव्य आश्चर्यजनक नहीं है। नरक में शिक्षित लोगों की संख्या बढ़ती जा रही है। बड़े-बड़े वैज्ञानिक वहाँ पहुँच रहे हैं, जिन्होंने बारूद से लेकर अणुबम बनाने तक अपनी बुद्धि का उपयोग किया है, जिन्होंने साइकिल से लेकर बाम्बर हवाई जहाज तक बनाने में सहायता पहुँचाई है। बड़े-बड़े डाक्टर और जीव-शास्त्र-विशारद हैं, जिन्होंने कुनैन से लेकर कीटाणु बम तक बनाने में अपनी चतुराई प्रदर्शित की। महान इंजीनियर बड़े-बड़े बाँधों का निर्माण करके हिमा के भागी हुए, वहाँ पहुँचे। फिर बड़े-बड़े दार्शनिक थे, जिन्होंने अपनी बुद्धि का उपयोग पूर्ववर्ती दार्शनिकों की तरह ईश्वर की खोज में न लगा कर मानव-समाज के मूल-तत्त्व के अनुसन्धान और विकास में किया। बड़े-बड़े कवि पहुँचे जिन्होंने हरि का कर्तव्य न करके फूलों और पौडशी के चेहरे का गुण-गान किया था। गिनेमा के अभिनेता और अभिनेत्रियाँ तथा सूत्र-धार, संज्ञातज्ञ, बड़े-बड़े नर्तक मतलब यह कि वर्तमान संस्कृति और विज्ञान ने जितने प्रकार के लोगों की सृष्टि की है वे सब वहाँ एकत्रित होने लगे। एक से एक विद्वान एक से एक साहसी जो दिन को रात बनाने की बात सोचें और रात को दिन। एक से बढ़कर एक कलावंत और गुणवंत। सभी विषयों में पराकाष्ठा पर पहुँचे हुए। यदि उन्होंने अनुशासन और धैर्य का परिचय दिया तो नरक के अधिकारियों को आश्चर्य हो सकता है, इस मर्त्य-लोक के निवासियों को तब आश्चर्य होता जब ये लोग अपनी स्वाभाविक सहिष्णुता और सम्भीरता को छोड़ देते हैं।

इन लोगों के नरक में पहुँचने से स्वाभाविक था कि शुरू-शुरू में नरक के अधिकारों कुछ चौकन्ने होते। अब तक वे लोग बात-बात में अपनी प्रजा को डाँटता कर्तव्य समझते थे और सदियों के अभ्यास के कारण बहुत क्रूर बन चुके थे। किन्तु मनुष्य की नम्रता और शिष्टता भी तो कोई चीज़ होती है। शीघ्र ही इन गुणों का असर नरक के अधिकारियों पर होने लगा। इसके अलावा मनोवैज्ञानिक अपना काम पूरी शक्ति लगाकर कर रहे थे। जो लोग दंड देने के लिए नियुक्त थे क्रूर चाहे कितने ही हों किन्तु थे बहुत ही निम्न स्तर के। मनोवैज्ञानिकों ने उनकी क्रूरता को दूर करने के लिए प्रयोग शुरू किये। यम-

दूतों पर इस प्रयोग का आश्चर्यजनक प्रभाव पड़ा। दूसरी तरफ उन्नीसवीं और बीसवीं सदी के महान राजनीतिज्ञों ने अपना काम शुरू किया। नरक का शासन बहुत ही त्रुटिपूर्ण था। बात-बात पर दंड और शक्ति का प्रयोग। अरबों वर्ष तक शक्ति का प्रयोग करते-करते नरक के अधिकारी भी तंग आ गये थे। इन नवागत राजनीतिज्ञों की बात पर पहले तो किसी ने ध्यान नहीं दिया किन्तु धीरे-धीरे यमराज को उनकी बातें अच्छी लगने लगीं। उसने अपनी प्रजा पर विश्वास करना शुरू किया और हरेक काम स्वयं करने की अपेक्षा अपनी जनता को भी बहुत-से अधिकार दे दिये।

इधर नरकवासियों में बहुत-से ऐसे लोग पहुँच गये थे, जिन्होंने जन-आन्दोलनों में अपना जीवन बिताया था। उन्होंने नरक की प्रजा में धीरे-धीरे जाग्रति उत्पन्न की। यमराज को भी इसी में भलाई दिखाई दी कि वह नवागत लोगों का सम्मान करे। अब उसके चेहरे पर क्रोध की तेवरी कभी-कभी दिखाई देती थी। चेहरे पर हरदम प्रसन्नता रहने लगी। यह परिवर्तन सबसे अधिक अच्छा लगा यमराज को पत्नी को जो आतंकपूर्ण चेहरे को देखकर हमेशा थर-थर काँपती थी।

नरकवासियों ने कुछ स्वतन्त्रता प्राप्त की तो उन्होंने सारी बुद्धि और प्रतिभा का उपयोग नरक की उन्नति में किया। प्रत्येक व्यक्ति नरक के उत्थान में लग गया। कलाकारों ने नरक को सजाना शुरू किया। पहले वहाँ प्रत्येक स्थान पर भयोत्पादक और बीभत्स दृश्य दिखाई देते थे, कलाकारों ने सुन्दर-सुन्दर मूर्तियों और चित्रों से सार्वजनिक स्थानों को सजा दिया। जहाँ रात-दिन मारो-मारो, काटो-काटो और हाथ-हाथ की आवाजें आती थीं वहाँ नूपुरों की झंकार और राग-रागिनियों के अलाप सुनाई देने लगे। इंजीनियर और वैज्ञानिक सबसे आगे थे। इतनी कुशलता उन लोगों ने पृथ्वी पर भी नहीं दिखाई थी। सबसे पहले रौरव और महा रौरव नरक के मुद्धार की बात चली। वहाँ सुई से भी अधिक तीक्ष्ण मुखवाले कीड़े किल-बिलाते थे। इस नरक के निवासियों का मांस ये कीड़े कुतरते रहते थे। इस नरक के वैज्ञानिकों ने उपलब्ध साधनों से एक घोल तैयार किया। घोल के छिड़कते ही एक भी कीड़ा बाकी नहीं बचा।

कुंभीपाक नरक में रहने वाले वैज्ञानिक भी चुप नहीं रहे। उन्होंने खौलते हुए कड़ाहों से भाप तैयार की और भाप से बड़े-बड़े कल-कारखाने चलने लगे। कुंभीपाक नरक में इतनी बिजली तैयार होने लगी कि वहीं नहीं यमलोक के सभी नरकों में प्रकाश पहुँचाया गया। बिजली के उत्पादन से नरक में वैज्ञानिक प्रगति बड़ी तेजी से होने लगी। बड़-बड़े प्लाण्ट लगाये गये। उनसे सभी चीजों का उत्पादन होने लगा। नरक लोक में पृथ्वी लोक की अपेक्षा एक विशेषता और थी। वहाँ वैज्ञानिक साधनों पर पूँजीपतियों का अधिकार था और बहुत समय तक इन साधनों से लोग व्यक्तिगत या सामूहिक रूप से लाभ उठाते रहे। किन्तु नरक लोक में आरम्भ से ही ऐसी कोई भावना नहीं थी। यहाँ कि प्रगति का श्रीगणेश अपने संकटों को दूर करने के लिए हुआ था, अतः उसमें किसी प्रकार की प्रतिद्वन्दिता या संघर्ष नहीं था, हाँ स्पर्धा अवश्य थी और वह भी इस बात में कि नरक को अधिक से अधिक सुखी बनाने के लिए कौन कितना अधिक कार्य करता है। इसलिए नरक लोक में पृथ्वी की अपेक्षा विज्ञान ने शीघ्र ही और अधिक उन्नति की।

इंजीनियरों ने तो कमाल ही कर दिया, नरक के यात्रियों को वैतरणी नदी में बहुत कष्ट होता था, वैतरणी पर स्वर्ग जाने के लिए बाल से भी बारीक पुल था, जिस पर चलते समय अधिकांश लोग नदी में गिर जाते थे और लाखों में कोई एक हरि-कृपा से स्वर्ग में पहुँचता था। नरक के इन इंजीनियरों ने स्वर्ग के पुल को ज्यों का त्यों रखा किन्तु पृथ्वी से नरक में आने के लिए एक अच्छा और मजबूत पुल तैयार हो गया। पुल के मुहाने पर ही ट्राम, मोटरें और बसें खड़ी रहती थीं जो मृत-आत्मा के पहुँचते ही उसे तुरन्त नरक में पहुँचा देती थीं। नरक-निवासियों ने नवागन्तुकों के लिए एक स्वागत-केन्द्र बना रखा था, जहाँ एक विशेष अधिकारी उसका परिचय लिख लेता। उसे यमराज के सामने उपस्थित किया जाता और फिर उसकी योग्यता के अनुसार काम व्रता दिया जाता। यमराज अब केवल वैधानिक शासक थे, पूरा काम तो वहाँ के निवासी मिल-जुल कर करते थे।

नरक में निवास का बहुत अच्छा प्रबन्ध किया गया, मत्तर-मत्तर मंजिल

के मकान । अलग-अलग फ्लैट और हर फ्लैट का अपना झूला । बटन दबाया ऊपर चढ़ गये, बटन दबाया नीचे आ गये । वैतरणी नदी पर जगह-जगह बाँध बाँधे गये, जहाँ से नहरें निकाली गईं और बिजली तैयार होने लगी । नरक के बड़े-बड़े नगर रात में विद्युत प्रकाश में उल्लसित दिखाई देते । हवाई जहाज उड़ने लगे, रेलें दौड़ने लगीं । दस-पन्द्रह वर्ष में ही कायापलट हो गई ।

इस उन्नति से यमराज और उसके दूतों को भी कम प्रसन्नता नहीं हुई । पहले यमराज को भैसे पर सवार होना पड़ता था । जब वह भैसे पर निकलता था तो कितना भद्दा लगता था । भैंसा फुदकता हुआ चलता था । उस समय यमराज की परेशानी देखने लायक थी । किन्तु अब वह भैंसा उस जगह भेज दिया गया जहाँ पुरानी चीजों को स्मृति के लिए रखा गया था । अब यमराज के पास एक दर्जन बढ़िया मोटरें थीं और हवाई अड्डे पर उसके लिए एक चार्टर्ड हवाई जहाज हमेशा प्रतीक्षा किया करता । प्रत्येक यमदूत को भी एक मोटर मिली । अब उन्हें पैदल नहीं चलना पड़ता ।

यमदूतों का स्वभाव बदल गया । विद्वानों ने नरक-लोक में पाठशालाएँ खोल दी थीं । यमदूत भी नियमित रूप से पढ़ने लगे । यमदूत ही क्या यमराज ने भी अपनी पत्नी के साथ एक प्रौढ़ स्कूल में नाम लिखा लिया था ।

नरक-लोक की यह उन्नति स्वर्ग-निवासियों से छिपी न रह सकी । रात को जब नरक में बिजली का प्रकाश होता तो स्वर्गवासी सोचते यह चाँद से भी सुन्दर और तारा-लोक से भी ज्यादा देदीप्यमान लोक कहाँ से आ गया । देवता और वहाँ के अन्य निवासी नरक-लोक की उन्नति देख-देख कर बहुत ईर्ष्या करने लगे । नरक में जैसे बाग-बगीचे लगे थे उनकी समता नन्दन वन भी नहीं करता था । नन्दन-वन में कल्पवृक्ष था, किन्तु मनुष्य के श्रम से जो चीज़ पैदा हो सकती है, वह वहाँ नहीं थी । नरक-लोक की सभा में जो चहल-पहल और उत्साह था वह सुधर्मा सभा में देखने को भी नहीं मिल सकता था ।

इससे पहले भी मनुष्य की उन्नति को देख कर देवता लोग चिन्तित हुए थे, किन्तु इस बार देवताओं को कोई मार्ग सुझाई नहीं दिया । जब कभी कोई मनुष्य उन्नति करता था इन्द्र अपनी मेनका, रम्भा, उर्वशी या किसी अप्सरा

को भेजकर निश्चित हो जाता था, किन्तु इन्द्र ने दखा ये लोग विश्वाभिन्न और शुकदेव से भिन्न हैं। उनके साथ पहले हा स्त्रियाँ हैं जो अप्सराओं से किसी बात में कम नहीं। विशेषता यह कि उन स्त्रियों में परिश्रम के कारण ऐसा स्वास्थ्य था जिसने उनकी खूबसूरती और कोमलता में चार चाँद लगा दिये थे। इन्द्र को स्पष्ट दिखाई दे रहा था कि नरक का परिश्रमशील मानव इन हवा में उड़ने-वाली, छुई-मुई-सी कोमल, दुबली-पतली, सुडौल आँख-नाक किन्तु रक्तहीन चेहरों की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखेगा। स्वयं अप्सराएँ नरक के स्वच्छ और सुन्दर मनुष्यों की ओर आकर्षित थीं किन्तु वे वहाँ के श्रम को देखकर इतना घबराती थीं कि जाने का साहस नहीं होता था।

देवताओं ने इस बात की खोज-बान का कि क्या स्वर्ग में भी कोई ऐसा व्यक्ति आया है जो स्वर्ग को नरक की तरह उन्नत कर सके। किन्तु वहाँ एक भा आदमी नहीं था। बात यह है कि स्वर्ग में बहुत कम लोग पहुँच पाते हैं। दो-चार सौ साल में मुश्किल से कोई माई का लाल वहाँ पहुँच पाता है। फिर स्वर्ग के इस यात्रा में अद्भुत गुण चाहिए केवल परब्रह्म परमेश्वर से लगन लगाने वाला, दिन-रात हरि-स्मरण करने वाला, राग-द्वेष-रहित, सकल कामनाओं से परे, स्वायत्त, माया-ममता में न रमनेवाला, प्राकृतिक सुख-सुविधाओं से घृणा करने वाला व्यक्ति ही स्वर्ग में पहुँच सकता है। बीसवीं सदी के कलाकार, राजनीतिज्ञ, वैज्ञानिक, काव्य, चित्रकार, संगीतज्ञ, चिकित्सक, मनोवैज्ञानिक, शिक्षा-विशेषज्ञ आदि के लिए स्वर्ग में स्थान कहाँ? वहाँ तो ऐसा आदमी जा सकता है जिसने पार्थिव पदार्थों से सदा घृणा की, तर्क और शास्त्र-चर्चा को श्रद्धापूर्वक माना, जो कभी पढ़ने-लिखने नहीं गया और कुछ पढ़ा-लिखा भा हो तो उसे पूरी तरह भुलाकर किसी गुरु की संगति की हो, जिसका ध्यान सांसारिक वस्तुओं पर कभी नहीं गया हो और कभी गया भा हो तो सब कुछ माया समझ कर या माया में ब्रह्म का दर्शन करके जिसने मुक्ति-पथ का पाथेय जुटाया हो। देवताओं के मुख से नरक-लोक की बड़ाई सुन-सुन कर स्वर्ग-वासियों में असन्तोष उत्पन्न हुआ और उनमें बेचैनी होने लगी। देवता लोग तो स्वर्ग के आदी थे, किन्तु जो लोग पृथ्वी लोक से आये थे वे अटपटापन अनुभव

करने लगे । यह सत्य था कि कल्पवृक्ष, कामधेनु और चिन्तामणि उनकी प्रत्येक इच्छा को पूरा करती थीं, किन्तु उन्हें काम करने का अवसर तो नहीं मिलता था । उनकी बुद्धि सो गई थी । और क्रिया-शक्ति मर चुकी थी । सब कुछ दूसरों के बल पर होता था । और अपने आप मिलने वाली चीज से शरीर को आराम मिल सकता है, किन्तु मन में सन्तोष और शांति कभी उत्पन्न नहीं हो सकती । स्वर्ग लोक के निवासी नरक में जाने की इच्छा करने लगे, किन्तु बहुत दिनों तक पिंजरे में रहने वाला तोता पिंजरे के बाहर निकल कर भी उड़ नहीं सकता । स्वर्गवासियों के मन में देवताओं का आदर दिन-दिन कम होने लगा । पृथ्वी लोक में शिक्षा का प्रचार इतना बढ़ रहा था कि वहाँ से कोई स्वर्ग में आता ही नहीं था । जो कोई भूला-भटका स्वर्ग की ओर मुँह भी करता तो पुल पर खड़े नरक के स्वागत अधिकारी उसे अपनी ओर आकर्षित कर लेते ।

स्वर्ग लोक से पृथ्वी पर एजेंट भेजे गए । स्वर्ग का सुन्दर से सुन्दर चित्र खींचा गया । सब को बताया गया, माया में लिप्त मत हो, 'नन कागद का पुतला' है किन्तु कोई ज्ञान-विज्ञान को छोड़ कर स्वर्ग की कामना ही नहीं करता था ।

देवताओं की चिन्ता बढ़ती गई, लेकिन उपाय दिखाई नहीं देता था । यमराज को पत्र पर पत्र भेजे गये—यह सब क्या हो रहा है ? अपनी प्रजा पर सख्ती करो, तुम्हें किस लिए रखा गया था ? यमराज पहले इन चिट्ठियों की पहुँच देता था किन्तु अब उसने पहुँच देना भी बन्द कर दिया । नरक पर देवताओं का कोई अधिकार नहीं रहा ।

किन्तु ईश्वर की दया से देवताओं को बहुत दिनों तक चिन्तित नहीं रहना पड़ा । आखिर एक आदमी सैकड़ों वर्ष बाद स्वर्ग लोक में पहुँच ही गया, यह आदमी पड़ा-लिखा था किन्तु साथ ही ईश्वर का भक्त और प्रकृति का विद्वेषी । इस आदमी को देख कर देवताओं को भी आश्चर्य हुआ ।

स्वर्गलोक में जो नवागन्तुक आया था वह पृथ्वी लोक में आडीटर (आय-व्यय निरीक्षक) था । वह अपने काम में इतना दक्ष था कि बड़े से बड़े काम को बरसों तक रुकवा देता था । किसी का वेतन रोकना, किसी को काम के

लिए पैसा न देना. उसके बायें हाथ का काम था। क्या मजाल उसके पास कोई कार्यवाही जाय और वह मीन-मेख न निकाले। घर में तीन-तीन घंटे पूजा पाठ करता था और कार्यालय में दस से चार की बजाय नौ से नौ बजे तक काम करता था। और घर जाते समय भी फाइलों का बण्डल अपने साथ ले जाता था। देवलोक के दूतों को यही आदमी ऐसा लगा जो स्वर्ग में जा सकता था। क्योंकि इस व्यक्ति के कारण प्रत्येक उस कार्य में बाधा पड़ती है जिससे दुनिया का भला होता है। स्पष्ट है कि इस कार्य से देवता लोगों को प्रसन्न होना चाहिए। यदि समय पर कोई स्कूल नहीं खुला, अध्यापक को समय पर वेतन नहीं मिला, विज्ञान की प्रयोग-शाला की सहायता बन्द हो जाय, दवा-खाने की दवाइयाँ कम हो जायें तो दूसरे देवताओं का प्रभाव ही बढ़ेगा।

इस नवागन्तुक को देखकर देवताओं के मन में कुछ आशा बँधी। जब उन्होंने अपने काम के लिए इस आडीटर की सहायता चाही तो वह खुशी-खुशी तैयार हो गया। उसने कहा, मेरा जीवन आपलोगों के लिए बीता है, यदि मेरी मृत्यु भी आप लोगों के काम आय तो मुझे प्रसन्नता ही होगी। आप मुझे किमा तरह नरक में भेज दें, फिर मैं सफलता प्राप्त कर लूँगा।

देवताओं के निवेदन पर विष्णु भगवान ने अपना गरुड़ आडीटर को दे दिया। गरुड़ वाहन ने आडीटर को नरक में पहुँचा दिया। स्वर्ग-लोक से कोई महानुभाव नरक में आया है यह सुनकर नरकवासियों में उत्सुकता उत्पन्न हुई। नरकवासी तो यह चाहते ही थे कि किसी तरह उनका स्वर्ग से सम्बन्ध-सम्पर्क स्थापित हो। अब तक कोई सूत्र मिल नहीं रहा था। अच्छा हुआ स्वर्ग ने ही एक आदमी आ गया।

नरकवासियों ने आडीटर का हृदय से स्वागत किया। फिर वे अपनी एक-एक चीज दिखाने लगे। सबसे पहले वैतरणी का पुल दिखाया गया। आडीटर ने पुल को देख कर प्रश्न किया “इस पुल का बजट कहाँ है और खर्च कितना हुआ है?” इंजीनियरों ने कोई बजट नहीं बनाया था और न खर्च का व्यौरा रखा था। उन्होंने अपनी गलती स्वीकार की। तब आडीटर ने कहा “आप लोगों ने यह अवैधानिक काम क्यों किया है?” इंजीनियर विधान

को जानते थे । अतः उनके मन में पछतावा हुआ । आडीटर ने कहा—“पछताने से क्या होता है ? इस प्रकार के अवैधानिक काम को समाप्त कर देना चाहिए ।” आडीटर को बात में सचाई थी । इंजीनियरों ने पुल बन्द करवा दिया ।

इसके बाद नरक के सत्तर-सत्तर मंजिल के घर दिखाये गये । आडीटर का ध्यान घरों की सुन्दरता या विशालता की तरफ नहीं था । उसने प्रश्न किया “इन घरों के वाउचर कहाँ हैं ?” इंजीनियरों को अपनी गलती अनुभव हुई । कुंभीपाक नरक के प्लांट और जनरेटर दिखाये गये । आडीटर ने पूछा इस प्रकार के कामों की अनुमति किससे ली गई ? विधान के अनुसार यमराज वहाँ का सबसे बड़ा अधिकारी है । किन्तु यमराज से कोई लिखित स्वीकृति नहीं ली गई थी । आडीटर के आपत्ति करने पर मकान गिरा दिये गये । प्लाण्ट और जनरेटर बन्द हो गये ।

नरक में अन्धेरा छा गया, चहल-पहल समाप्त हो गई । देवता लोगों ने देखा नरक में एक भी दीपक नहीं दिखाई दे रहा है । उनकी प्रसन्नता की सीमा नहीं रही । उस दिन सुधर्मासभा का घंटा बजा । सारे देवता वहाँ एकत्रित हुए और रात भर अप्सराओं का नृत्य होता रहा ।

आडीटर दूसरे दिन ही लौट आया । स्वर्ग लोक में उस का जितना स्वागत हुआ इन्द्र का भी नहीं हुआ था, जिस दिन वह वृत्रासुर का मंहार करके अमरावती में प्रवृष्ट हुआ था ।

किन्तु देवताओं की प्रसन्नता स्थायी नहीं रह सकी । नरक-निवासियों ने इस बार अपना बजट बनाया, हर बात नियमित रूप से शुरू की गई और देवताओं ने देखा बहुत जल्दी, किन्तु पहले से अधिक सुन्दर नरक रात्रि के विद्युत् प्रकाश में जगमगा रहा है ।

आई० सी० एस० का बच्चा

“मास्टर साहब, आज पहला दिन है, हम पढ़ेंगे नहीं, गाना गाएँगे।” अशोक ने बड़ी लापरवाही से कहा। पहली मुलाकात में ही उसने मास्टर साहब पर रूआव गाँठने की कोशिश की।

पहली मुलाकात तो सब कुछ होती है साहब। वस यों समझिए पति-पत्नी की जब पहली मुलाकात होती है तो वह पूरी जिन्दगी पर असर डालती है। और आजकल टीचर और विद्यार्थी के सम्बन्ध में भी यह बात देखी जा सकती है। लड़का जब मिडिल स्कूल से हाईस्कूल में और हाईस्कूल से कालेज में पहुँचता है तो इस पहली मुलाकात का महत्व क्रमशः बढ़ता जाता है। अगर अध्यापक ने पहले ही दिन कुछ करामात बता ही तो वस साल भर मजे हैं, लड़के भोगी बिल्ली की तरह हुक्म बजाते हैं। अगर पहले ही दिन मैदान से उसके पाँव उखड़ गये तो वस जमना मुश्किल है, उसी तरह जैसे किसी मेले-ठेले में बढ़ते हुए जन-समूह के कारण एक वार अपनी जगह से हिल गये तो गये सदा के लिए। अध्यापक इस मुलाकात की तैयारी ध्यान से करता है। और अक्सर देखा जाता है कि यह तैयारी ही हमेशा लुटिया डुवाती है। इसी तरह पहली मुलाकात के लिए सबके सब तो नहीं लेकिन कुछ लड़के जरूर तैयार होकर आते हैं। वस दाँव की बात है, जिसका चल जाए। हाँ, अध्यापक और विद्यार्थी पहले किस्मत-आजमाई जरूर कर लेते हैं।

अशोक को नौ वर्ष समाप्त होकर दसवाँ लगा था। लेकिन वह उस पीढ़ी का बच्चा नहीं जो मास्टर को हौवा समझकर उसके नाम से ही काँपने लगे। वह उस नई पीढ़ी का लड़का है जो मास्टर को अपना दोस्त, साथी और ज्यादा हुआ तो नौकर, एक मामूली नौकर समझता है।

“जरूर गाओ, वाह तुम कितना मधुर गाने होगे। मुनाओ तो तुम्हें कौनसा गाना पसन्द है?” चन्द्रशेखर ने मुस्कराते हुए अशोक के प्रस्ताव का हृदय से अनुमोदन किया।

“सुनिए”, कहकर अशोक ने जोर-जोर से गाना शुरू किया ।

“चल चल चमेली के वाग में गाना सुनाएँगे...”

जब लड़के ने गाने का प्रस्ताव किया था, चन्द्रशेखर को खुशी हुई थी । आदमी यों ही गलियों और सड़कों पर चाहे गुनगुनाले । लेकिन गाना है बहुत वेशकीमती और नाजुक चीज । बच्चे ही क्यों बड़े-बड़े गवैयों से भी जब गाने की फर्माइश होती है तो घोड़े की तरह मुँह बनाकर हिनहिनाने लगते हैं । और अशोक ने बिना फर्माइश के, या यों कहिए सिर्फ अपनी फर्माइश पर गाया था । मास्टर साहब ने मन ही मन बच्चे की हिम्मत को सराहा था, लेकिन उसने कौन-सा गाना गाया ? पहले जमाने में लोग वालकों को चौपाई रटाने थे, भजन मिखाते थे सुभाषित याद कराते थे । मास्टर साहब ने समझा था इन्हीं में से कोई चीज सुनने को मिलेगी । ज्यादा से ज्यादा किसी सिनेमा का अच्छा गाना सुना देगा । लेकिन यह, “चल चल चमेली...” वाह लड़के को न जाने किसने चुनकर गाना याद कराया है । इतने बड़े बाप के लड़के को ऐसे गीत याद कराये जाते हैं !

बहुत कुछ संभव था कि मास्टर अपने आश्चर्य और दुःख को प्रकट कर देते, लेकिन मुबह ही अशोक के बाप ने, काम शुरू करने से पहले जो लेक्चर दिया था, उसे वे भूले नहीं थे ।

चंद्रशेखर बी०ए०बी०टी० है । यह मत समझिए कि वे आजकल के हर माल की तरह नकली है और उनकी बी०टी०डिग्री में कुछ खोट है । उन्होंने तीस साल पहले बी०टी० परीक्षा पास की थी । पुराने माल में कहीं खोट हो सकती है ? पुराने जमाने का माल घिस भले ही जाए होता है सत्रह आने का, बिल्कुल खरा । और इन तीस सालों में लगातार वे पढ़ाते ही रहे हैं । तीस साल के अनुभव ने उनके ज्ञान को इतना खराया है कि वह हीरे की तरह चमकने लगा है । गतः छः सात साल से वे नगर के एक बड़े हाई-स्कूल की हेड मास्टरी कर रहे हैं । हजारों लड़के उनके पास पढ़-पढ़कर बड़े बड़े पदों तक पहुँच गये हैं । नगर के किसी रास्ते से गुजर तो जायँ, सड़क हो या सँकड़ी गली बच्चे-जवान सँकड़ों की तादाद में आदर से सिर झुका

देते हैं। “नमस्कार मास्टर साहब, नमस्कार गुरु जी” के सिवाय दूसरी आवाज सुनाई नहीं देती। नमस्कार की मूसलाधार वर्षा होती है और मास्टर साहब भी इस नमस्कार का इतना आदर करते हैं कि क्या मजाल जो एक बूंद भी मिट्टी में मिल जाय। पचपन साल के होने से बाद भी वे नमस्कार बटोरने में जितनी फुर्ती दिखाते हैं वैसी फुर्ती क्रिकेट के प्रतिपक्ष के खिलाड़ी ही दिखा सकते हैं, जो इस ताक में ही रहते हैं कि कब गोला आये और कब कैच करें।

मास्टर साहब ने इन नमस्कारों को ग्रहण करने के कई तरीके निकाल रखे हैं। एकबार होठों पर मुस्कान लाते हैं दूसरी बार सिर्फ आँखों से इशारा कर देते हैं कि तुम्हारा नमस्कार मिल गया, किसी को दाहिना हाथ उठाकर नमस्कार की रसीद देते हैं तो कोई उनकी झुकी हुई गर्दन से समझ लेता है कि उसकी नमस्कार गुरुदेव तक पहुँच गई। मास्टर साहब ने पढ़ाई के सिवाय शिक्षा-विज्ञान और बाल-मनोविज्ञान का गहरा अध्ययन किया है। शिक्षा के क्षेत्र में जितनी प्रणालियाँ हैं माण्टेसरी प्रणाली, किंडरगार्टन प्रणाली, सभी से वे परिचित हैं। लेकिन आज जब अशोक के पिता ने लम्बा-सा लेक्चर दिया तो उन्हें प्रतीत हुआ जैसे वे एक नया सिद्धान्त सुन रहे हैं।

यदि उस लेक्चर का सारांश यहाँ दे दिया जाए तो हमारे पाठक भी उससे लाभ उठा सकेंगे। अशोक के पिता ने शुरू शुरू में अपने देश की आबोहवा और यहाँ की पढ़ाई और यहाँ के अध्यापकों को जी भर के कोसा और विलायत की पढ़ाई, वहाँ के स्कूल और अध्यापकों की सेवा में लम्बा-चौड़ा स्तोत्र पढ़कर कहा :

“मास्टर साहब, पहले यह जान लेना चाहिए, हम बच्चे को क्या बनाना चाहते हैं ? मैं आई० सी० एस० हूँ। मेरा बच्चा कम से कम आई० सी० एस० तो बनना ही चाहिए।”

मास्टर साहब के मन में प्रश्न उठा, पूछ लूँ, और तुम इसे ज्यादा से ज्यादा क्या बनाना चाहते हो ? लेकिन चुप्पी साध गये। उनके मन में आया, कह दूँ, साहब आप चाहे कोशिश भी न करें, तब भी आपका लड़का आई० सी० एस० होकर रहेगा, आई० सी० एस० का बेटा आई० सी० एस०

न होगा तो क्या किसी मिडिल स्कूल के मास्टर का लड़का आई० सी० एम्० बनेगा ? लेकिन इस बात को भी वे पी गये ।

अशोक के पिता कहते गये, “इसके लिए यह जरूरी है कि उसे आज ही से आई० सी० एम्० मान लिया जाय । आप जैसा बर्ताव मुझसे करते हैं, वैसा ही उससे करें । कहीं मास्टरी मत जताने लिए ।” इतना कहकर वे खिलखिला कर हँस पड़े । सोच रहे थे उन्होंने कितनी बड़ी बात कितने सरल ढंग से कह दी है ।

मास्टर साहब इस हँसी से काँप गये लेकिन वे ध्यान लगाकर आगे की बातें सुनते रहे:—

“लड़का जब जो चाहे करने दीजिए । उसकी किसी इच्छा में आप बाधा मत डालिए । अगर बच्चे की इच्छा पूरी नहीं होती है तो वह कुढ़ता है और उसकी बुद्धि तेज नहीं होती ।”

मास्टर साहब के मन में आया कह दूँ, हाँ इच्छा को दबाने से आई० सी० एम्० का पौधा मुरझा जाएगा ।

आई० सी० एम्० कहता गया, “उसे कभी डराइए-धमकाइए मत । आप यह मत समझिए कि आप उसे पढ़ा रहे हैं, बल्कि आप ऐसा समझें कि अशोक पहले से सब कुछ जानता है । आप उसके पास पढ़ने आते हैं ।”

“जी ।” इस बार चन्द्रशेखर ने आँख फाड़कर वक्ता को देखा ।

“आप देखते क्या हैं, सच कह रहा हूँ । हमारे हिन्दुस्तानी अध्यापक बिलकुल बेवकूफ होते हैं । लड़का अगर यह समझ ले कि उसे कुछ भी नहीं आता तो वह अपना आत्म-विश्वास खो देता है और मास्टर को देवता मानने लगता है । मैं इस बात से नफरत करता हूँ । बस सौ बात की एक बात यह कि आप उसे इस तरह पढ़ाएँगे जैसे वह आपको पढ़ा रहा है । वह जब जो कहे उसकी बात मान लीजिए । हाँ एक बात का खयाल रखिए । समय की पाबन्दी होनी चाहिए । पाँच से छः । हिन्दुस्तानी इस मामले में निहायत रद्दी साबित होते हैं । कुछ भी हो, आप पाँच बजे आयेंगे और छः बजते ही उठ खड़े होंगे, एक मिनिट इधर-उधर नहीं ।”

इस लेक्चर के बाद एक बार तो चन्द्रशेखर के मन में आया कि नौकरी को पहले दिन ही नमस्कार कर लें, लेकिन फिर मन में विचार हुआ बाप की थ्योरी को बेटे पर ही आजमाने में जो अनुभव हो सकता है, वह दूसरी जगह कहाँ संभव है। थ्योरी और प्रेक्टिकल का यह संयोग कहाँ मिलेगा ? इसी विचार ने उन्हें इस काम से बाँध दिया।

थ्योरी की सब बातें ठीक थीं, लेकिन एक बात बहुत मुश्किल थी। पाँच दस मिनट में ही अशोक कह देता “बस आज का पढ़ना खत्म। अब आप कल आइए।”

इस अवस्था में मास्टर साहब अपना कर्तव्य स्थिर नहीं कर सकते थे। अगर अशोक से कहते कि नहीं, अभी हम बैठेंगे तो मारी थ्योरी पर पानी फिर जाता। और अगर पाँच बजकर उनसठ मिनट पर भी कुर्सी छोड़ देते तो आज्ञा का उल्लंघन होता। मास्टर साहब अपना समय पुरा करने के लिए तरह-तरह की बातें सीख कर आते थे, लेकिन साठ मिनट भी तो कोई चीज है। इन मिनटों का भी अजीब हाल है। जब आपको इनसे काम हो, आप सोचें घड़ी जरा धीरे-धीरे चले तो ये कम्बख्त हवा हो जाती हैं और जब आप इनमें कहें कि जल्दी-जल्दी पीछा छोड़िए तो मिनट की बात दूर रही सेकंड भी पहाड़ बन जाता है। खैर, किसी तरह दस-पाँच दिन में गाड़ी पटरी पर आ लगी।

अब मास्टर साहब को अशोक के यहाँ आने में काफी दिलचस्पी पैदा हो गई थी। वे देख सकते थे एक आई० सी० एस० को बचपन में कैसे ढालते हैं। वह कौन-सा साँचा है जिससे ढलकर आदमी इतने बड़े पद पर पहुँच सकता है।

यह दिलचस्पी कभी-कभी खत्म भी हो जाती थी और उस दिन मास्टर साहब निश्चय कर लेते थे कि कल पढ़ाने नहीं जाऊँगा, लेकिन सुबह होते-होते उनका यह संकल्प टूट जाता था। वे शाम को निश्चित समय पर आई० सी० एस० के बंगले में प्रवेश करते दिखाई देते थे। उन्हें पढ़ाते हुए अभी दस-बारह दिन ही हुए थे कि एक दिन उनका मन ग्लानि में भर गया।

उस दिन अशोक ने कहा, “आज हम फोटो खींचेंगे। आप देखिए फोटो किस तरह खींची जाती है।”

और वह पेन्सिल से कापी पर लाइनें खींचने लगा। थोड़ी देर में कापी पर एक चौपाया-सा बन गया।

अशोक ने प्रश्न किया, “आप पहचानते हैं यह कौन है?”

“मैं तो नहीं पहचान सका।” मास्टर ने जैसे अशोक को बढ़ावा देने के लिए कहा।

“यह गधा है, मास्टर साहब।”

“अच्छा गधा है?” मास्टर ने आश्चर्य प्रकट किया।

“हाँ, गधा ही है,” और फिर दूसरे क्षण खिलखिलाकर हँसते हुए बोला ‘नहीं मास्टर साहब आप हैं।’

रात भर मास्टर साहब उधेड़वून में लगे रहे। ट्यूशन छोड़ना उनके लिए बड़ी बात नहीं थी, लेकिन वे दूसरी बात ही सोच रहे थे। हमारा देश स्वतंत्र देश, उसके बड़े-बड़े अधिकारी और उनके बच्चे। और जब सुबह उठे तो उनके मुँह पर कोई ग्लानि नहीं थी। अशोक घर का एक मात्र बच्चा था। दादी, माँ और पिता। उस घर के ये तीन ही और प्राणी थे। पाँचवीं थी आया, जो अशोक का पालन पिछले नौ साल से कर रही थी। आया को हिन्दुस्तानी कहा जाय या विलायती? कोई एक बताना मुश्किल है। न उसे गंगा जमुनी कहना ज्यादा ठीक रहेगा। आया अशोक के साथ छाया की तरह रहती है, घर में भी और कान्वेंट में भी। अशोक की माँ को सभान्सोसाइटियों और क्लब से हो फुर्सत नहीं। अशोक जब पाँच-छः दिन का था तभी आया को दे दिया गया था और असल में वही उसकी माँ थी। अशोक की माँ हिन्दी बोलती थी, सिर्फ हिन्दी ही जानती थी, और आया की मातृभाषा भी शायद हिन्दी ही थी, लेकिन वह हमेशा अँग्रेजी में ही बात करती थी, चाहे वह शुद्ध हो या नहीं, उसका उच्चारण भी ठीक हो या नहीं। अशोक भी अपने पिता से और आया से हमेशा अँग्रेजी में बात करता था। हाँ उसे दादी और माँ से हिन्दी में बात करनी पड़ती थी। इसमें उसे दिक्कत भी काफी होती थी। और शायद

इस दिक्कत से बचने के लिए ही वह महीनों दादी और माँ से बात नहीं करता था। आया के रहते उसे कभी किस बात की थी और जब माँ क्लब या किसी उत्सव से लौटकर आती थी तब तक अशोक सो जाता था।

जब अशोक नौकरों को मारने लगता या हृद से ज्यादा शरारत करता था तो आया को ही बुलाया जाता था। आया भी अशोक से कम परेशान नहीं रहती थी, लेकिन उसने परेशानी से बचने के लिए काफी साधन ढूँढ रखे थे। उदाहरण के लिए जब अशोक आया के अधकटे बालों को खींचने लगता तो वह उसके हाथ में डंडा दे देती और कहती उस माली को जाकर जोर-जोर से पीटो, देखो, कितना मजा आता है। और मजा लूटने की यह आसान तरकीब अशोक की समझ में जल्दी ही समा जाती थी। अशोक जब बातें करके तंग करता या मवालों की झड़ी लगा देता तो आया उसे कहती, देखो अशोक, यह गाना कितना अच्छा है और “चल चल चमेली...” जैसे गाने मिखाती। जब अशोक किसी अच्छे चित्र को देखकर आया से कहता कि तुम भी वह चित्र खींचो तो वह गधा, मोटा आदमी, दीवाना और न जाने क्या-क्या बनाकर अशोक को हँसाती थी। मतलब यह कि आया अपनी शक्ति भर अशोक को सन्तुष्ट रखने की कोशिश करती थी। और यह तरकीब न अशोक की माँ में थी, न दादी में और न पिता में। और अशोक को यह जानकर आश्चर्य हुआ कि उसे पढ़ाने के लिए जो मास्टर आता है, वह भी इन गुणों से खाली है। बेकार उन्हें बुलाया जाता है।

जिस दिन मास्टर साहब भी अशोक से बहुत ज्यादा परेशान होते हैं, आया को ही शरण लेते हैं।

चन्द्रशेखर सिर्फ अशोक की पढ़ाई पर ही ध्यान नहीं रखते थे, दूसरी बातों पर भी गौर करते थे। उन्हें यह बहुत बुरा लगता था कि वह अकेला रहे। अशोक कानवेण्ट से लौटता तो घर पर उसे किसी लड़के या लड़की का साथ नहीं मिलता। छुट्टी के दिनों में वह बच्चों से बिलकुल कट जाता था। इसे चन्द्रशेखर बहुत बुरा मानते थे। लेकिन वे अपनी इस बात को किसके आगे रखें? पिता जी ने पहले दिन जो लेक्चर दिया था उसके बाद कभी एक

शब्द नहीं कहा। कभी आते-आते मिल जाते थे। चन्द्रशेखर ने एक-दो बार उन्हें हाथ जोड़कर नमस्ते भी की थी, किन्तु उन्होंने नमस्ते करने की सौजन्यता भी नहीं दिखायी। सिर झुकाये, या अगल-बगल देखते हुए निकल जाते थे। हाँ कभी-कभी अशोक की माँ जरूर अपने बेटे के हाल-चाल पूछ लेती।

अन्त में मास्टर साहब ने अशोक से ही सवाल किया। “अशोक जी, तुम्हारी दोस्ती किसी से नहीं है? हमने किसी दोस्त को कभी आपके साथ नहीं देखा?”

मास्टर साहब ने अशोक की जैसे किसी दुखती रग को पकड़ लिया। वह क्षण भर उदास रहा, और फिर बोला, “यहाँ कोई दोस्त ही नहीं, मास्टर साहब।”

“कोई दोस्त नहीं?” मास्टर साहब ने आश्चर्य प्रकट किया। अशोक के बंगले से थोड़ी दूर एक बंगला और था, जिममें एक दूसरे आई० सी० एस्० अफसर रहते थे। वह अफसर भी अशोक के पिता के साथ ही इस नगर में आया था, अन्तर इतना था कि अशोक के पिता शायद चीफ सेक्रेट्री थे और वह अफसर किसी विभाग का सेक्रेट्री था। अफसर का एक लड़का था दिलीप। दिलीप भी कान्वेण्ट में पढ़ने जाता था। मास्टर साहब दिलीप को जानते थे। इसी लिए उन्होंने कहा, “क्यों दिलीप तो आपके पास ही है। साथ पढ़ने जाता है। उसे दोस्त क्यों नहीं बनाते?”

अशोक ने पहले से भी ज्यादा उदास होकर कहा, “उससे मैंने दोस्ती की थी मास्टर साहब। वह हमारे घर भी आता था। एक दिन मैं उसके घर गया बस उस दिन...”

“उसी दिन क्या दिलीप की माँ या उसके बाप ने तुम्हें कुछ भला-बुरा कह दिया?”

“नहीं मास्टर साहब, मेरे डेड्डी ने ही मुझसे कहा, उनके घर नहीं जाना चाहिए। डेड्डी ने कहा दिलीप के बाप उनसे छोटे हैं, और छोटों के घर बड़ों को नहीं जाना चाहिए। इससे इज्जत चली जाती है। हमारे डेड्डी बड़े हैं। दिलीप के बाप छोटे हैं, इसलिए दिलीप भी छोटे हैं। छोटे आदमी से दोस्ती नहीं करनी चाहिए।”

अब तक अशोक की उदासी हट चुकी थी और जैसे वह अपना और अपने डेड़डी के बड़प्पन को पूरी तरह अनुभव कर रहा था इसी लिए उसकी आँखें आत्मविश्वास से चमकने लगीं ।

इस उत्तर का चन्द्रशेखर पर क्या असर पड़ा इसका पता नहीं चल सका । समय पूरा हो चुका था और वे अपने घर को चल दिये थे । रास्ते में उनके पाँव धीरे-धीरे पड़ रहे थे । बहुत ही धीरे-धीरे । और रात भर उन्हें नींद भी नहीं आई थी । उनके दिमाग में बस एक सवाल घूम रहा था । देश के भावी शासक किस तरह तैयार किये जा रहे हैं । उन्हें बचपन से ही किस बात की शिक्षा दी जाती है और बस वे आगे सोच नहीं सकते थे । सिर चकराने लगता था ।

दूसरे दिन मास्टर साहब ने कुछ पढ़ाने की कोशिश की तो अशोक ने बात करने की रुचि दिखाई । हाँ आज अशोक का रुख बिल्कुल बदला हुआ था । वह बात-बात में अकड़ने के बजाय नम्रता दिखा रहा था । मास्टर साहब ने कल की अधूरी बात चलाई । पूछा, “अच्छा दिलीप के साथ दोस्ती न सही, किसी दूसरे से दोस्ती कर लो ।”

“किस से दोस्ती करना मास्टर साहब ? सभी लोग तो डेड़डी से छोटे हैं ।”

चन्द्रशेखर ने सोचना शुरू किया । अशोक के बंगले से दाहिनी तरफ एक बड़ा बंगला है । वहाँ पहले कोई बड़ा सेठ रहता था । जब इस राज्य में मिनिस्टरी बनी तो मिनिस्टरों के लिए अच्छे-अच्छे बंगले तलाश किये गये । अच्छी-अच्छी मोटरों का प्रवन्ध किया गया । अशोक के बाप के बंगले के बाजू का बंगला एक मिनिस्टर को मिला । मिनिस्टर को चन्द्रशेखर अच्छी तरह जानते थे । मिनिस्टर के चार बच्चे और दो बच्चियाँ थीं । चार में से दो बच्चे चन्द्रशेखर के हाई स्कूल में पढ़ते रहे हैं । मिनिस्टर बनने के बाद उन बच्चों को इस हाई स्कूल से निकाल कर किसी मिशन हाई स्कूल में दाखिल कराया गया है । चन्द्रशेखर को मालूम था कि मिनिस्टर का लड़का शशिकान्त बिल्कुल अशोक के बराबर है । इसलिए उन्होंने शशिकान्त की चर्चा चलाने के लिए कहा—

“आप के दाहिने हाथ वाले बंगले में कौन रहता है ?”

“कोई मिनिस्टर रहता है मास्टर साहब ।” अशोक ने जवाब दिया ।

“आप जानते हैं, वह मिनिस्टर आपके पिता जी से बड़ा है या छोटा ।”
मास्टर ने प्रश्न किया ।

“हमारे डेड्डी से वे बड़े हैं, मास्टर साहब ।” और कुछ रुक कर बोला,
“देखिए, उनके घर पर तिरंगा झंडा है, हमारे घर पर झंडा नहीं है । डेड्डी
कहते थे जिसके घर पर झंडा होता है, वह बड़ा होता है ।”

“डेड्डी और क्या कहते थे ?” चन्द्रशेखर ने पूछा ।

“डेड्डी कहते थे, बगल के बंगले वाले आदमी उनसे बड़े हैं लेकिन अक्ल
नहीं है उनमें, अक्ल में हमारे डेड्डी ही बड़े हैं । वे हर बात डेड्डी से पूछकर
करते हैं ।”

“आप जानते हैं, मिनिस्टर साहब के एक लड़का है, बिल्कुल आपकी
उम्र का । उसका क्या नाम शशिकान्त है न ? उससे दोस्ती क्यों नहीं करते ?”

“कौन वह शशिकान्त ?” अशोक इस प्रश्न के साथ खिलखिलाकर हँस
दिया । वह कुछ देर तक हँसता ही रहा । पेट में बल पड़ गये, हँसते-हँसते ।
अन्त में हँसी रोककर बोला—“वह भी हमारे स्कूल में आने लगा है मास्टर
साहब । झंडेवाली मोटर में बैठकर आता है, लेकिन बस बौड़म है बौड़म । सब
लड़के इतना बनाते हैं उसे, बस पूछो मत ।”

“लड़कों को बनाने दो अशोक । उसका डेड्डी तुम्हारे डेड्डी से बड़ा है, क्या
तुम उससे दोस्ती नहीं कर सकते हो ?”

“शशि से मैं दोस्ती करूँगा, छिः ।” अशोक ने घृणा प्रकट करते हुए
कहा । “उसका सिर तो देखिए । घोटम घोट । सिर पर बाल नहीं रखाता
मास्टर साहब । बिल्कुल चिकनी हँडी, चिकनी हँडी, चाय गरम...”

इस बार अशोक की हँसी बहुत देर तक नहीं रुकी, मास्टर साहब भी अपनी
हँसी नहीं रोक सके ।

कुछ संभलकर उन्होंने कहा, “कभी उसके घर भी जाया करो, अशोक ।”

“नहीं मास्टर साहब, उनका घर बहुत गंदा है। शशि के डेड्डी धोती पहनते हैं। उनकी मम्मी साड़ी बाँधती हैं। आप बोलिए क्या बड़े आदमी साड़ी-धोती पहनते हैं ? बिल्कुल गंदे लोग हैं मास्टर साहब ?”

अशोक के चेहरे पर घृणा के भाव स्पष्ट झलक रहे थे ।

मास्टर साहब का मन न जाने किस उधेड़-बुन में लग गया था । अशोक उनकी यह हालत देखकर भागकर फरार हो गया । मास्टर साहब ने उसे रोका नहीं । वे स्वयं भी नहीं रुके । आज वे समय से पहले ही चले गये ।



संयोग

दासप्पा ने अपने मूंगफली के रुपये अंटी में लगाये और गंज की घड़ी पर दृष्टि डाली। केवल पाँच बजे थे, और उसे आठ कोस चलना था। आठ कोस याने पक्की सड़क पर आठ मील और फिर सड़क से हटकर कच्चे रास्ते पर भी लगभग उतनी ही दूर। कच्चा रास्ता झाड़ियों में से होकर जाता है, जमीन बहुत ऊँची-नीची है, हो सकता है वह रास्ता आठ मील से कुछ अधिक हो, हो सकता है कम हो। कभी किसी ने नापा नहीं है। बस बरसों से सुनते आये हैं, इसी लिए दासप्पा भी मानता आया है कि गंज से दासप्पा का गाँव आठ कोस है। अभी पाँच बजे थे और “देवनी” के बैलों की जोड़ी, रास हिलाते ही हवा से बात कर सकती थी। दासप्पा के साथियों ने रोका, रात यहीं आराम कर भोर होते ही उठ चलेंगे। दासप्पा ने एक बार सोचा रात को घर पहुँचे तो नींद भी ठीक तरह से आएगी। और कल का दिन, पूरे बारह घंटे का दिन काम के लिए मिलेगा। उसने एक बार आकाश की तरफ देखा। आसमान में कुछ ललाई फैल रही थी, सूरज फीका पड़ चुका था। दूसरे ही क्षण उसकी नजर बैलों पर गई, जो गाड़ी के जुए से बँधे थे। दिन भर चलने और उसके बाद जुगाली करके निश्चिन्त खड़े थे। मालिक की नजर पड़ते ही दोनों बैलों ने पूँछ हिलाते हुए गर्दन हिलाई। गर्दन हिलते ही छोटी-छोटी घंटियाँ बज उठीं। सारे शरीर में सिहरन-सी उठी, और इस सिहरन ने दासप्पा की सारी दुविधा समाप्त कर दी।

दासप्पा उछला, उसने झटपट बैलों को गाड़ी से जोड़ा और चल दिया। मिनट भर में वह गंज के गलिहार को पार करके बड़ी सड़क पर आ लगा। बैलों को पता था अब घर के लिए चल रहे हैं। घर, जहाँ उन्हें सानी में सनी हुई कुट्टी मिलेगी, दाना मिलेगा और घर वाली उसे प्यार के साथ पानी पिलाएगी, पुचकारेगी और ज्वार की रोटियाँ गुड़ के साथ खिलाई जाएँगी। जानवर के लिए भी घर की, अपने ठान की कितनी ममता है। इस ममता ने बैलों के पाँव में बिजली भर दी थी। गाड़ी इतनी तेजी से चल रही थी

कि उससे उड़ने वाली धूल भी उसे नहीं छू रही थी। गाड़ी तेजी से चली जा रही थी अपने पीछे धूल का गहरा, काला-सा धुंध छोड़ती हुई।

बैलों को यह भी मालूम था कि सुबह गाड़ी में माल लदा था और वह बहुत बोझल थी लेकिन अब हल्की है। बैलों को इस समय गाड़ी चाहे हल्की मालूम हो रही हो, लेकिन दासप्पा अपने आपको बोझ से लदा पा रहा था, इस समय उसकी अंटी भरी हुई है और गाड़ी रीत चुकी है। लेकिन गाड़ी के बोझ से उसे अपना बोझ ही ज्यादा लगता है। इसी लिए उछलती हुई गाड़ी में भी वह सन्तुलन रख रहा है और उसने बैलों को खुला छोड़ दिया है। बार-बार उसके हाथ अंटी पर जाते हैं और हर बार अंटी स्पर्श करते ही उसके शरीर में हजार घोड़ों की शक्तिवाली विजली दौड़ जाती है। हर बार हजार घोड़ों की शक्ति। इस शक्ति ने उसके दिमाग को पर लगा दिये, उसके शरीर को पर लगा दिये और इन परों की सहायता से वह गाड़ी के साथ-साथ हवा में तैरने लगा, आकाश से बातें करने लगा।

इस बार अंटी पर हाथ पड़ा और आँखों के सामने एक नक्शा खिंच गया। चौदह सौ रुपए, याने सौ सौ रुपये, याने बीस बीस रुपये को दस जगह रखने के बाद, अगर चौदह बार गिना जाए, काफी हैं एक आदमी को मालदार बनाने के लिए। अगर मैं अपने खेत में ज्वार बोता तो क्या इतना रुपया मिलता? मूँगफली के थैले से ज्वार का थैला भारी होता है, लेकिन ज्वार से मिलने वाला रुपया कमबख्त कितना हल्का होता है। मूँगफली के हल्के-फुल्के थैले के बदले कितना बोझल रुपया मिलता है। चौदह सौ रुपये, याने एक कोठा और उस पर एक कमरा, दो मंजिले पर बना कमरा, जिसमें किवाड़ होंगे। उस कमरे में अनाज की कोठी नहीं होगी, उपलें नहीं होगी, बैलों का न्यार नहीं होगा। होंगी केवल दो खाटें, खाटें क्यों निवार के पलंग और पति-पत्नी वहाँ सोयेंगे। पूनम की रात को जब चाँद निकलेगा...

दासप्पा ने जैसे यों ही रास को झटका, बैलों ने समझा मालिक उनकी तेज चाल से खुश नहीं है। इसीलिए उन्होंने ताकत लगाकर छलांगना शुरू किया। और इस गति से जैसे मालिक के दिमाग की चाल भी तेज हो गई।

चौदह सौ रुपये । आजकल जहाँ वे पति-पत्नी सोते हैं वहाँ बँल बँधा करेंगे । ...चौदह सौ रुपये याने दस तोले सोना, दस तोला सोना, जिससे उसकी पत्नी पाँव से लेकर सिर तक पीली हो जाएगी । उन गहनों को पहन कर वह कैसी लगेगी ? और उस समय पटवारी की, पटवारी ही क्यों पटेल की औरत भी उसके आगे पानी भरेगी । उनका कैसा पिलपिला चेहरा है । सोने का गहना पहनती हैं तो पीलापन और बढ़ जाता है, जैसे वरसों की बीमार हों । वस गाँव में मेरी पत्नी एक ही होगी, एक ही कि जिसे हजारों में, लाखों में पहचाना जा सके ।

और चौदह सौ रुपये का मतलब है, दो नम्बर जमीन । आसानी से मिल जाएगी । तरी और खुशक मिली-जुली लूंगा तो तीन नम्बर भी मिल सकती है और उस पर औरत-मर्द जमकर काम करेंगे तो अगले साल फली दूनी पैदा होगी । याने चौदह सौ की जगह अट्ठाइस सौ रुपये मिलेंगे । तब उसके घर में दो की जगह चार बैल होंगे । एक की जगह दो गाड़ी और और...

और उसका ध्यान मार्ग के दोनों तरफ उगे हुए खेतों पर चला गया । मीलों ज्वार लहरा रही थी । काली कच्च ज्वार, नागिन की तरह फन खोले बढ़ी चली जा रही थी और उस ज्वार से टकरा कर आने वाली हवा, उस हवा में कितना मीठा संगीत भरा था । एक कतार में दूर-दूर तक बाजाप्ता खड़ी हुई ज्वार कितना व्यवस्थित दृश्य अंकित कर रही थी । कहीं-कहीं कपास के पौधे जिन पर इक्के-दुक्के पीले फूल खिलने लगे थे, पीले फूल जो अपनी खूबसूरती पर इस एकान्त में भी इठला रहे थे । ऐसी ऐंट जो किसी राजमहल की षोड़शी भी दर्पण के समाने अनुभव न करे । किसी-किसी खेत में बालिश्त बराबर चना, अपने नन्हें-नन्हें शरीर में नन्हें-नन्हें पत्तों को जड़े हुए धीमी हवा में थिरक रहा था । छुटभैये चने में भी शहजादे की-सी शान है । खुश होकर उछलने लगता है और नाराज होता है तो चुपचाप खड़ा हो जाता है । छुटभैये का गुस्सा और छुटभैये की खुशी किसी से छिपी रह सकती है ?

कर्णाटक में ये दिन भी कितने सुन्दर होते हैं । जंगल हरियाली से ढँका है । शीत ने इस भूमि को सताने के बजाय सजाया है । शीत की ओस सिर्फ

यहाँ मोती ही नहीं बनती, ज्वार के पत्तों की मिठास के साथ मिलकर मिश्री बनाती है, और इस मिश्री को सूरज निकलने से पहले ही पेड़-पौधे चाटकर पनपते हैं। इस मिश्री को खाने के लिए पक्षी जमा हो जाते हैं। दासप्पा के सामने प्रभात का दृश्य अंकित हो गया, जब वह बीस-पच्चीस गाड़ी वालों के साथ इसी रास्ते से गंज गया था और गाड़ियों की घंटी से पूरा रास्ता गूँज रहा था। वे गाड़ियों के पहियों की घरघराहट, बैलों के गले की घंटियों का घन-घनन एक ताल पर, सम स्वर में बज उठना कितना मनमोहक था। इस मनमोहक ताल स्वर पर पक्षी चों-चों करके ज्वार की मिश्री समटने में जुट गये थे। कितनी तरह की चिड़ियाँ लाल, हरी, काली और पचरंगी। इन जाड़ों के दिनों में, कर्णाटक में इतनी रंग-विरंगी चिड़ियाँ कहाँ से आ जाती है ?

दासप्पा का ध्यान गया सामने, पश्चिम पर। सूरज डूब गया था। गर्मी के दिनों में सूरज डूबने और रात होने में कितना अन्तर होता है ? लेकिन जाड़ों में, जैसे दोनों साथ-साथ आते हैं : हाँ साथ-साथ आते हैं। गर्मी में रात का आना बूढ़ों की नींद की तरह है और जाड़ों की रात बच्चों की नींद है। पलकें झपीं और नींद निगोड़ी ने डेरा डाला। सूरज डूबा ही था कि अंधेरा छा गया और दस-पन्द्रह मिनट में ही रास्ता धुंधला हो गया। अंधेरा जल्दी ही गहरा हो गया। आकाश तारों से ढँक गया और गाड़ीवान की आँखें भी जैसे अंधेरे में डूब गईं, राह सुझाई नहीं दे रही थी। रास्ते के दोनों तरफ खड़े हुए पेड़ जैसे जमकर खड़े हो गये हों और जाड़ों की रात का सन्नाटा जिसमें बड़े से बड़े सूरमा का दिल काँप जाए। फिर जाड़े की साँझ घर से बाहर रहने वाले आदमी के दिल की स्मृतियों को पंख लगा देती है, इसी लिए हृदय हलका हो जाता है और कम्पन उसे ज्यादा कँपाता है। कँपाता है और मसल-मसल देता है।

अभी तो सड़क भी पार नहीं हुई। अभी साढ़े तीन मील भी नहीं आ सका था दासप्पा। आता भी कैसे ? उसे चले हुए अभी आधा घंटे से कुछ ज्यादा हुआ होगा और अभी उसे खड्डों से भी रास्ता तय करना है। गाड़ी जाने

कैसे रास्ता पार करेगी ? उसके चारों तरफ अंधेरा था। वह एक हाथ से बैलों की रास थामे था और दूसरा हाथ अंटी पर। अगर तीसरा हाथ भी होता तो शायद उससे हृदय को थामता और इससे उसे बहुत कुछ धीरज मिलता।

दासप्पा ने रास को जोर से झोला दिया। इस बार बैलों ने रही-सही पूरी ताकत लगा दी। बैलों को इस अंधेरे में न जाने कहाँ से हिम्मत मिल गई। उनकी आँखें इस अंधेरे में भी चमक रही थीं, लेकिन गाड़ी हिम्मत हार गई। उस ठंड में, उस अंधेरे में पहियों ने चलने से इन्कार कर दिया। जाड़े के मारे ठिठुरे हुए एक पहिये से लोहे का कड़ा झनन करता हुआ दूर जाकर पेड़ से टकराया और बेसुरी आवाज में जमीन पर गिर गया बेनाल होकर। दासप्पा का दिमाग जैसे आसमान से धरती पर आ गया। उसने देखा उसकी गाड़ी मोड़ से पाँच-सात कदम इधर ही है। पाँच-सात कदम और फिर उसके आगे तो मोड़ है, वह मोड़ जहाँ से उसके घर को रास्ता जाता है, उसके खेतों को रास्ता जाता है। जिस रास्ते पर आँखें बिछाये, जाड़े से और शर्म से और प्रतीक्षा से सिमटी हुई उसकी पत्नी खड़ी होगी...

उसने जोर से रास खींची। इस तनाव को बैलों ने तत्काल अनुभव किया और वे खड़े हो गये। दोनों बैलों के नाक से जोर-जोर से साँस निकल रही थी। यह साँस उस सन्नाटे में कैसा भय भर रही थी। बैल हाँफ रहे थे। दासप्पा काँप रहा था। अब ? अब क्या होगा ?

“कौन हो गाड़ीवान ? गाड़ी का पट्टा उतर गया है ?” सड़क के किनारे बनी हुई झोपड़ी में से राचटप्पा ने अपनी बूढ़ी आवाज में काँपते हुए अन्दर से पूछा। दासप्पा को लगा जैसे किसी पुरानी कबर में से उसे कोई सम्बोधित कर रहा है। दासप्पा राचटप्पा को बरसों से जानता है। उसने जैसे तिनके का सहारा पाया। वह कुछ हँसते हुए बोला—

“शरणार्थी दादा ! मैं हूँ दासप्पा, यही मावलगी का दासप्पा। मुझे पहचाना नहीं ?”

राचटप्पा बीड़ी पीते हुए बाहर निकला। सुलगी हुई बीड़ी की चमक में

बरकत दे। आजकल धरतीमाता की अपने बेटों पर दया है दासप्पा, नहीं तो...”

“हाँ दादा, दया तो है ही, गुरु महाराज की दया है ही, नहीं तो मेरे बाप जमीन जोतते-जोतते मर गये, कभी सौ रुपये आँख से नहीं देखे।”

इस बात ने राचटप्पा को छू दिया। उसे भी तो बीस और दस बरस हुए इस दुकान को लगाकर लेकिन क्या दो सौ रुपये कभी देखे हैं इक्ठ्ठे ? यही पन्द्रह बीस रुपयों में उसका व्यापार चलता है। और व्यापारी होते हुए भी उसके पास कभी सौ रुपये नहीं हुए। यह किसान का लड़का बैल की पूँछ मरोड़कर चौदह सौ रुपये का धनी बन गया। चौदह सौ रुपये ! कितनी बड़ी रकम है !

बूढ़ा बहुत बातून है। किसी मुसाफिर से आने पर घंटों नहीं छोड़ता, कितने चुटकुले याद हैं उसे, कितनी कहावतें और कितने ही घरों का इतिहास उसे मालूम है। लेकिन आज दासप्पा के बार-बार बात चलाने पर भी वह खामोश था। उसका कंठ सूखा जा रहा था, जीभ अकड़ रही थी और साँस तेज चलने लगी थी और सिर्फ मुँह से हाँ या ना कह देता था।

बूढ़े की छाती में न जाने क्या उथल-पुथल हो रही थी, वह चूल्हे पर आग में तपती हुई हंडी की तरह खदबदा रहा था। दोनों हथेलियाँ आज बरसों बाद गरम लग रही थीं और बगल में अजब गुदगुदी-सी हो रही थी, आज उसे फिर अपनी कुहनी लचकदार लगी। चौदह सौ रुपये ? इतने रुपयों से वह गंज में दुकान खोल सकता है, और दूसरे व्यापारियों की तरह...

रुपया भी क्या अजीब चीज है ? उसे लेकर कोई भी आदमी अपने ढंग की कल्पना कर सकता है। बिल्कुल अपने ढंग से और रुपया निर्लेप नारायण है, सभी की कल्पना में साथ देता है। उसी रुपये को लेकर दासप्पा ने अभी एक कल्पना की थी और राचटप्पा ने उससे अलग कल्पना कर डाली और दोनों समय रुपया खामोश था। खामोश था और खामोशी रजामन्दी का, स्वीकृति का दूसरा नाम है।

दासप्पा लेट तो गया, लेकिन उसे नींद नहीं आ रही थी। अंधेरा होने से क्या होता है, अभी मुश्किल से सात ही बजे होंगे। जब उसने देखा बढ़ा

राचटप्पा बात नहीं करना चाहता तो वह अपने आपसे बात करने लगा । जब आदमी दूसरे से बात करता है तो कुछ सिलसिला रहता है, लेकिन जब अपने आपसे बात करता है तो वह सिलसिला खत्म हो जाता है । न जाने कितनी तरह की बातें दिमाग में घूम जाती हैं ।

राचटप्पा ने बातें बन्द कर दीं, लेकिन उसकी खाँसी बन्द नहीं हुई थी । वह अपने में अजीब चीज अनुभव कर रहा था । जाड़े की रात में भी वह पसीने से तरबतर हो गया था और साँस की गति तेज होती जा रही थी । अन्त में उससे रहा नहीं गया तो वह इधर-उधर टहलने लगा । फिर वह अंधेरे में ही टटोलने लगा । आखिर उसके हाथ कुट्टी काटने का गँडासा लगा और वह उस गँडासे को लेकर झोपड़ी के बाहर निकल गया । दासप्पा का ध्यान बूढ़े की ओर उस समय आकर्षित हुआ जब वह देहली पार कर रहा था और ठोकर खा गया था । उसने देखा बूढ़े के हाथ में गँडासा है ।

राचटप्पा दो क्षण बाद ही भीतर आया । इस समय उसके हाथ में गँडासा नहीं था, लेकिन वह बुरी तरह काँप रहा था । उसके साँस लेने की और छोड़ने की आवाज साफ सुनाई देती थी । मालूम पड़ता था उसे अब जल्दी-जल्दी साँस लेने में कठिनाई हो रही थी । राचटप्पा ने पुकारा, “दासप्पा ।”

उसकी आवाज में कितना कम्पन था ? उस कम्पन में कैसा भाव छिपा था ? दासप्पा के पूरे शरीर में रोंगटे खड़े हो गये । उसने कुछ जवाब नहीं दिया । जवाब न पाकर राचटप्पा बाहर चला गया ।

जब दो-चार मिनिट बाद भी राचटप्पा झोपड़ी में नहीं आया तो दासप्पा का मन ऊपर-नीचे होने लगा । अभी कुछ क्षण पहले उसने मनुष्य के सान्निध्य में, उसके निवास स्थान में प्रवेश करके अभय पाया था, लेकिन अब उसे उसी झोपड़ी में, आदमी की उपस्थिति से इतना भय क्यों लग रहा है, और जैसे उसे कोई अन्दर ही अन्दर उकसा रहा था, उठ, दासप्पा, उठ । यहाँ रहना ठीक नहीं है । जल्दी से जल्दी छोड़ दे इस कोठरी को । उठा अपने कम्बल को । लेकिन बैल का क्या होगा ? ऊँह सुबह देखा जाएगा । और वह दो क्षण बाद ही झोपड़ी के बाहर आ गया । कन्धे पर कम्बल पड़ा

था। कम्बल होने के बाद किसान को किस बात की चिन्ता। जहाँ बिछाया वहीं घर बन गया।

झोपड़ी से दो सौ पग दूर एक नाला है। नाला टेढ़ा-मेढ़ा होकर दूर तक निकल गया है। पास-पास उसकी शाखाएँ भी फैली हुई हैं। दासप्पा मुख्‍य नाले में न बैठकर उसकी एक शाखा में चला गया। मिट्टी काफी मुलायम लगी। उस पर कम्बल बिछाकर वह बैठा। मन में उसने शान्ति अनुभव की, लेकिन कुछ चिन्ता बनी हुई थी। साथ ही उसमें हिम्मत भी आ गई थी। धरती का बेटा धरती के साथ था। अब उसका हाथ आना सरल नहीं था।

दासप्पा को झोपड़ी से या दूकान से निकले दाम-पाँच क्षण बीते होंगे कि राचटप्पा का जवान लड़का घर से रोटी लाया। आजकल सुबह किसान लोग अपना माल गंज ले जाते हैं, इसलिए दिन निकलने से पहले राचटप्पा का व्यापार शुरू हो जाता है और एक तरह से दिन निकलते-निकलते बहुत कुछ व्यापार समाप्त भी हो जाता है। बेटा बाप की सहायता करता है इसलिए वह बाप के लिए घर से रोटी लाता है और यहीं सो जाता है। बेटे ने देखा बाप दूकान में नहीं है। उसने जगह पर रोटी रखी और खुद कम्बल डालकर सो गया। लेटते ही थोड़ी देर में उसे नींद आ गई।

राचटप्पा एक और आदमी के साथ अपनी दूकान में दाखिल हुआ। वह और उसका साथी बहुत चौकन्ने थे। जैसे वह रोम-रोम से जानने की कोशिश कर रहे हों, कहीं खतरा तो नहीं है। उन्होंने इधर-उधर आहट की, लेकिन सोनेवाले में जागने के चिन्ह प्रकट नहीं हुए। राचटप्पा ने अपने साथी के कन्धे पर हाथ रखा और साथी को जैसे इशारा मिला। उसने गँडासे को उठाकर अपनी पूरी ताकत लगाकर सोनेवाले की गर्दन पर वार किया।

सोनेवाला न हिला न डुला, न पुकारा न चिल्लाया? वार जमकर पड़ा था, ठीक जगह पर पड़ा था। राचटप्पा और उसके साथी ने अनुभव किया, उनके पाँवों के पास कुछ गोली-नीली चीज बही चली आ रही है। वह पानी नहीं हो सकता, पानी इतना गरम, इतना चिपचिपा कहाँ होता है?

राचटप्पा ने सोनेवाले की जेब टटोली, कमीज खून में तर था। उसने काँपते हाथों से जल्दी-जल्दी देखा, जेब खाली था। काँपते हाथों से उसने अंटी को देखा, वहाँ भी कुछ नहीं था। अन्त में निराश होते हुए राचटप्पा ने अपने साथी से कहा—“अप्पा, मालूम होता है, साले ने यों ही गप्प हाँकी थी। नाहक मारा गया।”

साथी ने जरा गंभीरता से कहा, “अरे डरते क्यों हो? लाओ एक बीड़ी तो मुलगाओ और जरा दीपक लगाकर अच्छी तरह तलाश करो। पूरे सात सौ देने होंगे। मैंने कितनी बहादुरी का है। बस एक ही बार और दो टुकड़े।”

“हाँ, हाँ तुम्हें सात सौ ही दूंगा, लेकिन कुछ हाथ तो लगे।” अब तक राचटप्पा के हाथ का काँपना रुक गया था। उसने तेजी से मिट्टी का दिया जलाया। साथी ने बीड़ी मुलगाई। और फिर दोनों बड़े उत्साह से लाश की तरफ बढ़े।

अभी दोनों लाश तक पहुँचे भी नहीं थे कि राचटप्पा की निगाह लाश के मुँह पर गई और उसके मुँह से एक चीख निकल गई। वहाँ दासप्पा की नहीं उसी के बेटे की लाश, ठंडी लाश पड़ी थी। बस चीख के बाद वह कुछ क्षण तक बेहोश-सा पड़ा रहा। जब उसने आँखें खोलकर झोपड़ी में इधर-उधर देखा तो साथी दिखाई नहीं दिया। वह न जाने कब का चला गया था। राचटप्पा को लगा जैसे रह-रहकर भूकम्प हो रहा है, रह रहकर उसकी झोपड़ी में जोर से धमाका होता है। वैसी ही गड़हड़ाहट है, जैसी कभी उस सड़क पर टैंक के चलते समय हुई थी।

इधर दासप्पा अपने गाँव के पास आ गया था। अभी सप्तर्षि आकाश के बीचोंबीच भी नहीं आये थे कि वह घर पहुँच गया। द्वार बंद थे। भीतर दीपक टिमटिमा रहा था। दासप्पा ने दूर से देखा और मिलन की उमंग ने सारी थकान और भय को एक साथ ही समाप्त कर दिया। वह तेजी से घर की ओर बढ़ा।

